क.ब.चौ.उ.महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव से संलग्न एवं खान्देश शिक्षण मंडल,
अमलनेर के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, प्रताप महाविद्यालय, अमलनेर द्वारा आयोजित..

राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी

संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक विमर्शकेन्द्री हिंदी साहित्य

Identity Based & Discorative Hindi Literature of Constitutional India

Special Issue -January 2026 (Volume- Part-II)

मुख्य संपादक एवं संयोजक, राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी
प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'
अध्यक्ष,स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

कार्यकारी संपादक
प्रो.डॉ.हर्षवर्धन जाधव
प्र.प्राचार्य,प्रताप स्वशासी महाविद्यालय

सहसंपादक
प्रो.डॉ.कल्पना पाटील
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359 Peer Reviewed Journal Impact Factor 6.325

प्रताप स्वशासी महाविद्यालय, अमलनेर(महाराष्ट्र) द्वारा आयोजित

राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी-2026

संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक विमर्शकेन्द्री हिंदी साहित्य

Identity Based & Discorative Hindi Literature of Constitutional India

मुख्य संपादक एवं संयोजक, राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी
प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन'

कार्यकारी संपादक एवं प्र. प्राचार्य
प्रो. डॉ. हर्षवर्धन जाधव

सहसंपादक
प्रो. डॉ. कल्पना पाटील

Special Issue- January 2026
(Part-II)

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359 | Peer Reviewed Journal | Impact Factor 6.325

Taran Publication
New Delhi

JOURNAL DETAILS

Name of Journal	**International Journal of Multidisciplinary Research and Technology**
e-ISSN	**2582-7359**
Subject	**Multidisciplinary**
Publisher	**Taran Publication**
Impact Factor	**6.325**
Website	**www.ijmrtjournal.com**
Contact Number	**8950448770, 9996906285**
Country of Publication	**India**
Editor-in-Chief	**Dr. Mandeep Kaur**

शुभ संदेश

खान्देश शिक्षण मंडल,अमलनेर द्वारा संचलित प्रताप महाविद्यालय (स्वशासी), अमलनेर के स्नातकोत्तर हिंदी विभाग द्वारा आयोजित और राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान(रुसा) द्वारा वित्त पोषित राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी के लिए मेरी ओर से अनंत शुभकामनाएं। इस एकदिवसीय संगोष्ठी का विषय- संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक विमर्श केंद्री हिंदी साहित्य पर आधारित है । इस विषय के सभी पहलुओं पर सभी मान्यवर एवं प्राध्यापक संगोष्ठी के अंतर्गत विचार मंथन कर जो सार ग्रहण करेंगे वह निश्चित रूप से साहित्य की गरिमा को बढ़ाने में सहायक होगा ऐसी आशा करता हूं।

संवैधानिक भारत के अस्मितामूलक विमर्श केंद्री हिंदी साहित्य के इस अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका के द्वितीय भाग के सभी लेखकों को एवं मुख्य संपादक प्रोफेसर डॉक्टर शशिकांत ' सावन ' को मैं हार्दिक साधुवाद देना चाहता हूं, जिनके कारण प्रताप महाविद्यालय अंतर्राष्ट्रीय पटल पर अनुसंधान का यह दूसरा अंक प्रकाशित कर रहा है !आप सभी महानुभावों के प्रति पुनः हार्दिक आभार।

प्रो. डॉ. हर्षवर्धन दामोदर जाधव
कार्यकारी संपादक एवं प्रभारी प्राचार्य
प्रताप स्वशासी महाविद्यालय, अमलनेर

संपादकीय

"भारतीय संविधान-सम्मान के परिप्रेक्ष्य में संपन्न, राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी का प्रकाशित हो रहा यह अंतरराष्ट्रीय शोध पत्रिका का दूसरा भाग आपके सम्मुख प्रस्तुत करते हुए, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, प्रताप महाविद्यालय अमलनेर ,महाराष्ट्र अतिव हर्ष की अनुभूति कर रहा है। संवैधानिक भारत के हम 75 वर्ष अर्थात अमृतवर्ष हम मना रहे हैं । भारतीय संविधान की बुनियाद, उसकी गरिमा और उसके मानवीय मूल्यों को अस्मितामूलक विमर्शकेन्द्री हिंदी साहित्य' समय के साथ बार-बार अधोरे खित करते रहा है। अस्मिता एक सांस्कृतिक-राष्त्रीय बुनियाद है। संवैधानिक भारत के हिंदी साहित्य में जनकवि नागार्जुन ,अदम गोंडवी ,दुष्यंत कुमार, गजानन माधव मुक्तिबोध ,महापंडित राहुल सांकृत्यायन , रांगेय राघव, यशपाल, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी ,कृष्णा सोबती हरिशंकर परसाई, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, कुसुम मेघवाल, श्योराज सिंह बेचैन ,अनुज लुगुन, पार्वती तिर्की ,वॉटर भेंगरा तरुण, निर्मला पुतुल, हबीब तंवर, मुद्राराक्षस, हरिराम मीना, मोहनदास नैमिषराय, रमणिका गुप्ता, नासिरा शर्मा, जैसे अनेक रचनाकारों में अस्मितामूलक साहित्यसर्जन में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। यह साहित्य देश के उन तमाम समुदायों का शोषित पीड़ित उपेक्षित प्रताड़ित और सदियों से दमित संवर्गों का आईना है, जो सदियों से मूक बने हुए थे ।संविधान शिल्पी डॉ बाबासाहेब अंबेडकर ने बहिष्कृत भारतीयों की अस्मिता उन्हें पुनः लौटने का काम ,उनको मनुष्य के रूप में पुनः स्थापित करने का कार्य और सामाजिक-राष्ट्रीय जीवन में उन्हें समता, बंधुता ,न्याय और नैतिकता के समवेत स्वतंत्र जीवन जीने का अधिकार भारतीय संविधान में प्रदान किया। इसलिए हिंदी ही नहीं बल्कि समग्र भारतीय साहित्य में यह एक क्रांतिकारी कदम है ।

हिंदी का अस्मितामूलक विमर्शकेन्द्री साहित्य इसी को स्पष्टता से अधोरेखित करता है ।अस्मितामुलक साहित्य में विशेषतः स्त्री विमर्श ,आदिवासी विमर्श अंबेडकरवादी अर्थात दलित विमर्ष, किन्नर ,वृद्ध, विकलांग ,अल्पसंख्यक, कृषक,घुमंतू, पर्यावरण जैसे अनेक साहित्य-प्रवाह है। ये सभी अस्मिताकेंद्री विमर्श हिंदी साहित्य में जनआंदोलन के रूप में साहित्यिक धारा में स्थापित होने लगे, यह हिंदी साहित्य के लिए सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। भारतीय समाजसुधारको इसे प्रेरणा दी। विशेषतः संत कबीर, महात्मा ज्योतिबा फुले ,संत गाडगे महाराज ,संत तुकडोजी महाराज, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजाराम मोहन राय, संविधान शिल्पी डॉ बाबासाहेब अंबेडकर जैसे युग प्रवर्तको ने भारतीय बहिष्कृतों में वह नवचेतना, नवोन्मेष और नवक्षमता जाग्रत की, जिससे स्वतंत्र साहित्य सृजन में नई प्रतिभाएं उभरकर आई। हिंदी साहित्य में विशेषतः नारी विमर्श की बुनियाद भारतीय शिक्षा की अधिष्ठात्री माता माता सावित्रीबाई फुले है, जिन्होंने देश की बेटियों और स्त्रियों को सबसे पहले शिक्षा देने का कालजयी कार्य किया है ।

अस्मितामूलक साहित्य की उल्लेखनीय कृतियों में, जूठन, पिंजरे अपने-अपने, मुर्दहिया, मोर्चा, पड़ी लाठियां गणतंत्र की, मुर्दहिया, शव काटने वाला आदमी ,जंगल पहाड़ के गीत, अल्मा कबूतरी, शिकंजे का दर्द,समय से मुठभेड़ धरती की सतह पर दोहरा अभिशाप, टोकरी में दिगंत, हमारे हिस्से का सूरज, ढलती शाम का सूरज,

आलो अंधारी, मैं हिजड़ा, एक भंगी कुलपति की आत्मकथा, आज बाजार बंद है, छप्पर जैसी अनेक रचनाएं हिंदी साहित्य में जीवन के भीषन यथार्थ को, सदियों से अव्यक्त संवेदनों को अत्यंत ताकत के साथ उजागर करती है।

आधुनिक कबीर अर्थात जनकवि नागार्जुन की रचनाएं संवैधानिक भारत की भीषण दुरावस्था विषमताएं और विकृतियों को आलोकित करती है..

" देश हमारा भूखा नंगा घायल है बेकारी से,
मिले ना रोजी रोटी, भटके दर-दर बने भिखारी से!"

जनकवि एवं प्रसिद्ध हिंदी शेयर अदम गोंडवी की यह काव्य पंक्तियां संवैधानिक भारत की दुरावस्था विडंबना और विकृतियों को दर्शाते हुए तमाम देशवासियों को भीषण यथार्थ की ओर अंतर्मुख करती है

"काजू भुने प्लेट में, व्हिस्की गिलास में
उतरा है राम राज्य, विधायक निवास में
आजादी का ये जश्न मनाए तो किस तरह?
जो आ गए हैं फुटपाथ पर, घर की तलाश में।"

मैं इस राष्ट्रीय आयोजन के प्रति खानदेश शिक्षण मंडल के सभी सम्माननीय सदस्यों, प्रताप महाविद्यालय के प्र.प्राचार्य, हिंदी विभाग के मेरे सभी सहयोगी प्राध्यापको,देश से उपस्थित हिंदी सेवी प्राध्यापकों,शोधार्थियों और उच्चतर राष्ट्रीय शिक्षा अभियान को हार्दिक धन्यवाद देकर अपने संपादकीय का समापन करता हूं। निश्चित ही अस्मितामूलक विमर्शकेंद्री हिंदी साहित्य कि यह राष्ट्रीय संगोष्ठी और इसमें प्रस्तुत किए गए शोधपरक आलेख, वैचारिक चिंतन, समीक्षाएं हिंदी साहित्य को एक नई सक्षम पहचान देने में सहायक सिद्ध होंगे इस दृढ़ विश्वास के साथ...

" गणतंत्र को गतिमान बनाने के लिए साथ सब चले
संसद को शक्तिशाली करने के लिए साथ सब चले
फिर से यह वतन सोने की चिड़िया कहलाएगा
जरा संविधान की बुनियाद की ओर साथ सब चले !"

प्रोफेसर डॉ. शशिकांत 'सावन' (डी .लिट.)
मुख्य संपादक एवं संयोजक राष्ट्रीय हिंदी संगोष्ठी 2026
हिंदी विभागाध्यक्ष
प्रताप स्वशासी महाविद्यालय,अमलनेर(महाराष्ट्र)

INDEX

Sr. No.	Title/Author	Page No.
1.	**संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक जनजातीय हिंदी साहित्य** *प्रो.भगवान गव्हाडे*	1
2.	**'ज़िन्दगी 50-50' उपन्यास में किन्नर विमर्श** *डॉ. मधुकर खराटे*	5
3.	**अम्बेडकरवादी (दलित) उपन्यासों में चित्रित शोषित समुदायों का जीवन** *प्रा.डॉ.रविंद्र आर.खरे*	13
4.	**हिंदी आंबेडकरवादी कविता और व्यक्ति की गरिमा** *डॉ. संजय रणखांबे*	20
5.	**इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ** वसावे मुरलीधर बी (शोधछात्र), प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन' (शोधनिदेशक)	25
6.	**किन्नर समाज और हिंदी साहित्य लेखन: एक विमर्श** डॉ. आनंद गुलाबराव खरात	29
7.	**संवैधानिक अधिकारों एवं अस्मिता के लिए जीवन संघर्ष करते स्त्री चरित्र** **(हिंदी की लघुकथाओं के सन्दर्भ में)** *प्रो.डॉ.कल्पना राजेंद्र पाटील*	34
8.	**हिन्दी कविता में चित्रित आदिवासी जीवन विमर्श** *प्रा. सुनिलकुमार विठ्ठल पाटील*	39
9.	**संजीव की कहानियों में पारिवारिक समस्याओं का चित्रण** *डॉ. रोहिदास धोंडीबा गवारे*	43
10.	**निर्मला पुतुल की कविता में चित्रित नारी विमर्श** *डॉ. अनंत भालचंद्र पाटील*	48
11.	**सातपुड़ा के भील समुदाय और उनकी सांस्कृतिक विरासत** *शोधार्थी राऊत कालुसिंग करमसिंग, शोध निदेशक प्रो.डॉ.सुलक्षणा जाधव (घुमरे)*	54
12.	**'जंगल पहाड़ के पाठ कविता संग्रह में आदिवासी विमर्श'** *प्रा. सुजाता लखीचंद राय*	59

13.	**समकालीन हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श: संवेदना और सरोकार** *डॉ. अंशुमान वल्लभ मिश्र*	63
14.	**संत रविदासजी का बेगमपुरा और भारतीय संविधान की प्रस्तावना** *डॉ. भगवान बाबुराव भालेराव*	68
15.	**संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक अम्बेडकरवादी हिंदी दलित साहित्य** *डॉ.राहुल भागवत संदानशिव*	72
16.	**परिवार के अधूरेपन की स्थिति को व्यक्त करता,मोहन राकेश का नाटक 'आधे-अधूरे'** *डॉ.वसीम मक्रानी*	78
17.	**लघु कथाओं में व्यंजित दलितों की व्यथा** *डॉ जे विजया भारती*	82
18.	**समकालीन हिंदी ग़ज़लों में स्त्री विमर्ष** *प्रा. डॉ.एफ.मस्तान शाह*	86
19.	**संवैधानिक चेतना से विमर्श-साहित्य तक: समकालीन हिंदी साहित्य की नई दिशा** *डॉ. विजयप्रकाश ओमप्रकाश शर्मा*	93
20.	**संवैधानिक भारत की विषमताओं एवं दुर्दशाओं को चित्रित करता हिंदी साहित्य** *प्रोफेसर डॉ .शशिकांत 'सावन ' (डी.लिट.)*	97

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक जनजातीय हिंदी साहित्य

प्रो.भगवान गव्हाडे
हिंदी विभाग, मानविकी संकाय,
हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, गाचीबोवली , हैदराबाद तेलंगाना

साहित्य समाज का आईना होता है यह धारणा आम जनता में प्रचलित है, परंतु सच्चाई यह है कि यह धारणा भारतीय आज़ादी के पश्चात ही विश्वसनीय होती हुई दिखाई देती है l क्योंकि यदि हम हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिक्षेप डालते हैं तो पता चलता है कि आदिकाल में जो चरित काव्य लिखा गया है उसमें राजाओं की लड़ाइयां हैं, हाथी, घोड़े, तोपें, तलवारें, खंजर भालों की आवाजें थी l राजाओं का गुणगान था लेकिन साहित्य के केंद्र में मनुष्य कहीं भी नहीं था l मनुष्य की पीड़ा, दर्द, सुख संपदा को स्थान नहीं था l मध्यकाल में भी यदि कबीर को छोड़ दें तो निर्गुण सगुण, राम और कृष्ण के विराट रूपों का वर्णन, साधना और जप तप, अवतार आडंबर पर ही काव्य रचा गया l वहां पर भी मनुष्य केंद्र में नहीं था l रीति काल की तो बात ही छोड़ दीजिए, वहां पर तो काव्य रीतियां और नारी देह की सुंदरता, सुघड़ता, नाक नक्ष अर्थात नख शिख वर्णन में अपनी सारी कला और शक्ति खर्च की गई है l परंतु नारी के अंतर्मन की व्यथा वेदना, करुणा, आंसू नहीं दिखाई देते हैं l आधुनिक काल में हम प्रेमचन्द जैसे रचनाकार को छोड़ दें तो जासूसी और अय्यारी जैसे मनोरंजनात्मक साहित्य ही केंद्र में था l और जहां तक नवजागरण काल की बात करते हैं तो उसमें भी राष्ट्रीय चेतना थी, आज़ादी का आंदोलन था, कुर्बानियां बलिदानियां थीं लेकिन यह आज़ादी किसके लिए थी इसका कोई सुनिश्चित स्पष्ट संकेत नहीं था l क्या यह आज़ादी स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों , घुमंतू जनजातियों के लिए थी? अर्थात वहां पर भी मनुष्य केंद्र में नहीं था l

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात भला हो हमारे संविधान निर्माताओं का जिनके कारण स्त्रियों दलितों आदिवासियों घुमंतू जनजातियों, अल्पसंख्यकों तथा किन्नरों के लिए विशेष प्रावधान करके उन्हें मनुष्य होने का दर्ज़ा प्राप्त हुआ l भारतीय संवैधानिक मूल्य' यह हमारे लिए किसी वरदान से कम नहीं है l जिसमें मौलिक अधिकारों की बात की गई है l

इसी क्रम में मुझे इस बात की अपार आनंदानुभूति हो रही है कि भारतीय संवैधानिक मूल्यों की जो धन राशि मिली हुई है जिसके कारण हम सब लोग लिख पढ़ पाएं हैं l और जो आपने यह मौलिक विषय चर्चा के लिए रखा है वह अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक है l इस प्रकार के शीर्षक को लेकर लंबे समय से मेरे मन-मस्तिष्क में भावात्मक एवं वैचारिक तूफान चल रहा था। सन् 2014 से 2016 तक निरंतर इस विषय के गर्मज्ञ तथा जानकार विद्ववानों से चर्चा-विमर्श करता रहा। इस दौरान कई विधिज्ञों, वकिलों, कानूनगो तथा न्यायाधीशों से लेकर अध्यापकों, लेखकों एवं आलोचकों से भी सलाह-मशवरा लेता रहा। इस सारी प्रक्रिया के पीछे यही एक मात्र उद्देश्य था कि भारतीय संविधान के महत्त्व, उपादेयता और प्रासंगिकता को स्थापित कर सकूं। कहने का तात्पर्य यह है उपर्युक्त सभी मान्यवर विद्ववानों से चर्चा करते समय उनसे सकारात्मक प्रतिक्रिया आने की बजाए प्रश्नार्थक और नकारात्मक प्रतिक्रियाएँ ही अधिक रूप में प्राप्त हुई। कई महोदय ने तो यह कहा कि संविधान और हिंदी साहित्य का परस्पर क्या संबंध है? ऐसे मौके पर उन्हें यह समझाना पड़ा कि आजादी के बाद भारतीय संविधान जब से लागू हुआ, उसके पश्चात ही सही अर्थों में हिंदी साहित्य ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य का व्यापक परिदृश्य स्थापित हुआ।

साहित्य को यदि हम समाज का प्रतिबिंब कहते हैं, तो निश्चित रूप में समाज के सभी वर्गों की छवि उसमें दिखाई देनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ । भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का प्रावधान नहीं किया गया होता तो आज हम जिस आधुनिक साहित्य और विभिन्न विमर्शों की चर्चा कर रहे हैं, उन विमर्शों का नामों निशान भी नहीं होता। क्योंकि प्राचीन भारतीय वैदिक धर्म ग्रंथों में स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों, घुमंतू जनजातियों, किन्नरों, किसानों, अल्पसंख्यकों अर्थात सभी शूद्रों को लिखने, पढ़ने, बोलने और सुनने का भी कोई अधिकार ही नहीं दिया गया था। तो भला साहित्य का विकास और सभी का प्रतिबिंब कैसे झलकता? यकिन मानिए 'भारतीय संविधान' को कुछ पल के लिए हटा दीजिए और फिर देखिए कि किस प्रकार अंधाधुंद अराजकता और

अमानवीय क्रूरता अपनी चरम सीमा पार करेगी। आज जो हमारे देश में समता, बंधुता, न्याय, , शांति, अमन,, सौहार्द्र, मौलिक अधिकार और सभी वर्गों की कमोबेश उन्नति हो रही है, वह सिर्फ भारतीय संविधान के निर्माण, अमल और अतित्व बने रहने का ही नतीजा है। इस बात को यथार्थ रूप में आप परखना चाहते हो तो कुछ सालों पहले राजनीतिक परिवर्तन के बाद हमारे देश में जो राजनीतिक उथल-पुथल हुई है, किस तरह से हमारे मौलिक अधिकारों का हनन हुआ है, इस पर नीर-क्षीर विवेक से सोचिए, नतिजे आपके सामने आएँगे।

आजके दौर में हर कोई निरंकुश तानाशाही के दहशत में जी रहा है। चाहे वह छात्र हो, शिक्षक हो, महिला हो, दलित हो, आदिवासी हो, किसान हो, मुस्लिम हो, प्रतिपक्षी राजनेता हो, लेखक हो, सच्चा पत्रकार हो, बुद्धिजीवी हो, समाजसेवी हो या कलाकार हो, हर कोई मजबूर-लाचार होकर चुप्पी साधे हुए है। जुबान खोलते ही सरकारी कार्रवाईयों को जवाबदेही बनना पड़ रहा है।

बहरहाल - खैर मनाईए कि कुछेक लोग अपनी जान जोखिम में डालकर अभिव्यक्ति के खतरे उठाते हुए लोकतंत्र और मानवीयता को बचाने के लिए जी जान से कोशिश कर रहे हैं। उन बहादूर लोगों में प्रस्तुत पुस्तक के तमाम लेखक-आलेखक भी शामिल है; जो हार्दिक बधाई और अभिनंदन के पात्र है। क्योंकि उन्होंने मानवाधिकार और संविधानिक मूल्यों पर अपनी कलम चलाई है।

अब थोड़ा-सा भारतीय संवैधानिक मूल्यों पर भी प्रकाश डालते हैं। 'मूल्य शब्द लैटिन भाषा के Valeri शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है- उपयोगिता या महत्त्व। अर्थात 'मूल्य' वह संकल्पना है, जो मानव की इच्छाओं की तुष्टि करें। 'मूल्य' वे मापदंड हैं, जो संपूर्ण संस्कृति और समाज को सार्थकता प्रदान करते हैं। आसान शब्दों में कहा जाए तो, जो जीवन को अस्तित्व एवं गति प्रदान करें, वह मूल्य है। इन्हीं मूल्यों की उत्पत्ति समाजीकरण द्वारा होती है।

प्राचीन भारतीय धर्म धर्म ग्रंथों में कुल चार मूल्य प्रचलित थे, जिन्हें पुरुषार्थ भी कहा जाता है। जो क्रमशः धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष कहा जाता है। जिनका एक दूसरे से बहुत निकट का संबंध है। लेकिन उनका एकमात्र उद्देश्य है मोक्ष की प्राप्ति। जो पूर्णतः धार्मिक और आध्यात्मिक बात है। किस प्रकार जीवन जिया यह कोई मायने नहीं रखता है, बल्कि उसका अन्त कैसे हुआ, इसी पर बल दिया गया है।

पाश्चात्य विद्वान स्पैजर ने मूल्यों को छह भागों में बाँटा है। जैसे धार्मिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सामाजिक मूल्य, कलात्मक मूल्य, राजनीतिक मूल्य तथा सैद्धांतिक मूल्य के रूप में देखा जा सकता है। इन मूल्यों को प्राप्त करने के स्रोत है- परिवार, विद्यालय, समाज और व्यक्ति के आस-पड़ोस का माहौल। इससे भी आगे जाकर मूल्यों के संदर्भ में विचार किया जाए तो, ज्ञान की अन्य शाखाओं में इन्हीं मूल्यों को विशिष्ट संज्ञाओं से उध्दृत किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि वैज्ञानिक मूल्यों को परिभाषित करना हो तो क्रमशः पाँच श्रेणियों में बाँट कर देखा जा सकता है- जैसे वस्तुनिष्ठता, सृजनात्मक सोच, तथ्यपरकता, तर्कयुक्तता और उत्सुकता आदि। हमारे भारतीय समाज का दुर्भाग्य यह है कि हम कभी इन वैज्ञानिक मूल्यों पर कभी विचार ही नहीं करते हैं। जो मानवीय विकास का मूलमंत्र है। उसे ही हम नजर अंदाज करते हैं और अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास, रूढि, परंपरा, झूठ, फरेब, दैववाद, भाग्यवाद, अकर्मण्यता, पाप-पुण्य, अविवेक आदि अनेक कर्मकाण्डों के चक्कर में अपना विनाश स्वयं ही कर बैठते हैं।

हमारी शिक्षा व्यवस्था में धर्म को प्राथमिकता देने के कारण शैक्षिक मूल्यों का हनन हो रहा है। जो शिक्षा हमें वैज्ञानिक सोच पैदा कर सकती है, उसकी बजाए हम परंपरागत सनातनी प्रतिगामी शक्तियों को प्राथमिकता देकर विनाश के भागीदार बन रहे हैं। जिन शैक्षिक मूल्यों में श्रम, सफाई, सच्चाई, प्रामाणिकता, समानता, आपसी सहयोग तथा वैधुभाव पैदा करने की क्षमता है, उसे हम आसानी से अनदेखा कर रहे हैं। जब तक हम अपने बच्चों को उपर्युक्त शैक्षिक मूल्य एवं वैज्ञानिक मूल्य का पाठ नहीं पढ़ाएँगे, तब तक संवैधानिक मूल्यों का महत्त्व एवं प्रासंगिकता को प्रतिपादित नहीं कर पाएँगे।

जिन संवैधानिक मूल्यों के आधार पर आधुनिक भारतीय समाज की नींव रखी गई है, वे क्रमशः इस प्रकार हैं- राष्ट्रीय एकता, स्वतंत्रता, समानता, धर्म निरपेक्षता, बंधुभाव, समाजवाद, प्रजातंत्र, सहिष्णुता, न्याय, विचारों की अभिव्यक्ति तथा अस्पृश्यता का अन्त आदि। इन सभी संवैधानिक मूल्यों पर विस्तार से विचार किया जाए तो स्वतंत्र बृहद ग्रंथ का निर्माण हो सकता है।

हमारे भारतीय संविधान के निर्माण के पीछे का दर्शन क्या है? इसका जवाब संविधान की प्रस्तावना को सही अर्थों में समझने से ज्ञात हो जाता है कि इसमें वह दर्शन है, जिस पर पूरे संविधान का निर्माण हुआ है। पूरे विश्व में सबसे बेहतरीन, मौलिक तथा अनोखा संविधान सिर्फ भारत देश का है। जिसमें सभी लोकतांत्रिक विशाल देशों के संविधान का निचोड़ है। संविधान निर्माता भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी के अथक परिश्रम, सतत अध्ययन-चिंतन-मनन और प्रचंड ज्ञानात्मक अनुभूति का प्रतिफलन है। उन्होंने भारत के संविधान की शुरुआत बुनियादी मूल्यों के साथ की है, जिसे संविधान की प्रस्तावना या उद्देशिका कहते हैं। उसमें आए हुए मौलिक बिंदुओं पर संक्षेप में प्रकाश डालने पर पता चलता है कि यह मूल्य भारतीय समाज व्यवस्था को उन्नति के शिखर पर ले जाने के लिए कितने महत्त्वपूर्ण हैं। 'बंधुता' के संदर्भ में कहना हो तो, देश में सभी वर्ण, वर्ग और जाति के लोग एक परिवार की तरह आचरण करें, आपसी भाईचारा बनाये रखें। 'प्रभुत्त्व संपन्न' से तात्पर्य है- भारत देश अपने फैसले लेने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है, कोई भी बाहरी विदेशी शक्ति उसके फैसलों को प्रभावित नहीं कर सकती। तृतीय विचार बिंदु है, 'समाजवाद' जो भारतीय सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अत्यंत मौलिक है। जिसका उद्देश्य है सरकार जमीन और उद्योगधंदों की हकदारी से जुड़े कानून इस तरह बनाएँ की सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ कम हो। 'समानता' मानवमुक्ति का मूल मंत्र है। देश में कानून के समक्ष सभी नागरिक समान है। सामाजिक असमानता की समाप्ति और सभी नागरिकों को समान अवसर उपलब्ध कराना सरकार का पहला कर्त्तव्य होना चाहिए। सरकार जिसके लिए प्रतिबद्ध हो। संविधान की प्रस्तावना में 'पंथ निरपेक्ष शब्द का महत्त्व अनन्य साधारण है। संविधान निर्माताओं ने सभी धर्मो को समान माना है। देश में किसी एक धर्म को विशेष दर्जा प्राप्त नहीं है। परंतु दुर्भाग्य यह है कि आज एक विशिष्ट धर्म के लोग और उनके सत्ताधारी राजनेता धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता को बढ़ावा दे रहे हैं।टी

भारत देश के नागरिकों को कई प्रकार की 'स्वतंत्रता' प्रदान की गई है। अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता को सबसे ज्यादा महत्त्व दिया गया है। चाहे वह लिखित रूप से हों या मौखिक रूप से हों। इसी के साथ-साथ 'न्याय' का महत्त्व और अनिवार्यता को रेखांकित किया गया है। यह न्याय सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से बहुत आवश्यक माना गया है। देश के किसी भी नागरिक के साथ उसकी जाति, धर्म, रंग या लिंग आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता। धन, बल के आधार पर न्यायिक पक्षपात करना गैर-कानूनी तथा असंवैधानिक माना गया है। इसी प्रक्रिया को विस्तार से जानना हो तो न्याय व्यवस्था का सम्यक अवलोकन करना होगा।

हमारे देश में 'गणराज्य' व्यवस्था को अनन्य साधारण महत्त्व दिया गया है। देश की सर्वोच्च शासन व्यवस्था का प्रमुख भारतीय लोगों के द्वारा चुना जाएगा न कि किसी वंश या खानदान से होगा। इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है। संविधान की प्रस्तावना में 'लोकतंत्रात्मक' शब्द को अधोरेखित किया है। जिससे तात्पर्य यह है कि ऐसी शासन व्यवस्था जहाँ लोग अपना शासक खुद चुनते हैं और उन्हें जवाब देही बनाते हैं। इस व्यवस्था के प्रधान सेवक को जनता के प्रति ईमानदार और कर्तव्यनिष्ठ रहना चाहिए। इस प्रकार की अनेक बातों को महत्त्व दिया गया है। जिसमें उल्लेखनीय है कि संविधान के भाग तीन में अनुच्छेद 12 से 35 के बीच जिन मौलिक अधिकारों को रखा गया है, वह अत्यंत अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण है। जिसका उल्लेख करना अत्यावश्यक है। जैसे समता या समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर न्याय माँगने का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक एवं शिक्षा का अधिकार तथा संवैधानिक उपचारों का अधिकार इत्यादि।

प्रस्तुत आलेख में मैंने संवैधानिक मूल्यों पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया है। बहुत सारे वक्ताओं के भाषणों को तथा आलेखों को यहां प्रस्तुत किया जाएगा 1 जिसका लिप्यंतरण करने आवश्यकता है 1 "संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक जनजातीय हिंदी साहित्य " विषय को लेकर मुझे विस्तृत विवेचन करना था, लेकिन समय की अपनी पाबंदियां है 1 फिर भी उसका कुछ अंश यहां पर प्रस्तुत करना भी मेरा परम कर्तव्य है 1 यह जो मुझे विषय चर्चा के लिए दिया गया है वह बहुत ही मौलिक है 1 इस साहित्य के प्रेरणास्त्रोत महात्मा ज्योतिबा फुले, राजर्षी शाहू महाराज, डॉ बाबासाहेब आंबेडकर, बिरसा मुंडा, टंट्या मामा भील तथा अनेक आदिवासी क्रांतिवीर हैं 1 प्रकृति पर्यावरण, सूर्य चंद्र, नदी पहाड़, पेड़ पौधों , पंछी प्राणियों को अपने जीवन अभिन्न हिस्सा बना कर साहित्य सृजन किया गया है 1 यह तो साहित्य और संवेदना के स्तर की बात हुई 1 लेकिन आज आदिवासी समाज,

सभ्यता, परंपरा, भाषा, जीवन और अस्तित्व के सामने अनगिनत चुनौतियां हैं l उसका कोई हल निकलता हुआ नज़र नहीं आ रहा है l बल्कि कहना यह होगा कि संकट और अधिक गहराता हुआ नज़र आ रहा है l

इस विषय पर दृष्टिक्षेप करने पर भी विवाद की स्थिति पैदा हो सकती है l इसका कारण यह है कि हम अपने लिए भी आदिवासी शब्द का प्रयोग करते हैं तो लोगों के आंखों का कांटा बनते हैं l रक्षक को राक्षस कहा गया है यह बात सभी पढ़े लिखे लोग जानते हैं l यदि हम आदिवासी लोग अपने ही जल, जंगल और ज़मीन को बचाने की कोशिश करते हैं तो हमें नक्सलवादी करार देकर मौत के घाट उतार दिया जाता है l हमें अपने ही घर में बेघर कर दिया जा रहा है l हमें अपने अस्तित्व, अस्मिता और मनुष्य होने की पहचान को स्थापित करने से पहले ही हमारा अस्तित्व नष्ट किया जा रहा है l ऐसी नाजुक परिस्थिति में आदिवासी समुदाय के साहित्य, सभ्यता और दर्शन को लेकर आप लोग सभा संगोष्ठियों का आयोजन कर चर्चा विमर्श कर रहे हैं, यह अपने आप में गौरवपूर्ण पल है l आप सभी को अंतःकरण की गहराइयों से साधुवाद अर्पित करता हूं l धन्यवाद, जोहार, जय बिरसा, जय भीम, जय भारत l

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

'ज़िन्दगी 50-50' उपन्यास में किन्नर विमर्श

डॉ. मधुकर खराटे

राजेश्वर नगर, प्रोफेसर कालोनी,

भुसावल, जि. जलगाँव (महाराष्ट्र)

किन्नर विमर्श पर आधारित भगवंत अनमोल का उपन्यास 'जिन्दगी 50-50' सन् 2017 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में एक परिवार की कथा है, जिसमें दो पीढ़ियों में दो किन्नर बालकों का जन्म होता है। रामलखन के दो बेटे हैं -अनमोल एवं हर्षा। इसमें छोटा भाई अर्थात् हर्षा किन्नर है। अनमोल की पत्नी का नाम आशिका है। उनके बेटे का नाम सूर्या है, वह भी किन्नर है। यही परिवार की त्रासदी है। उपन्यास में एक प्रेम कथा व्यापक रूप में चित्रित है वह है अनमोल एवं अनाया की। उपन्यास की कथावस्तु तीन स्तरों पर चलती है। अनमोल एवं अनाया का प्रेम, रामलखन का परिवार और अनमोल दाम्पत्य तथा उनका पुत्र सूर्या। कथा का केंद्र मुंबई एवं बेंगलुरू है।

कथा का प्रारंभ रामलखन के परिवार से होता है। जिसका शीर्षक है 'मैं, माँ और आशिका'। मैं कथा निवेदक (नैरेटर) है जिसका नाम अनमोल है। आधुनिक युग में सभी माता-पिता का स्वप्न होता है कि उनका बेटा इंजीनियर बने। अपने परिचितों के पुत्रों से श्रेष्ठ साबित हो। रामलखन की भी तीव्र इच्छा है कि उनका पुत्र शर्मा के बेटे की तरह खूब धन कमाये। द्विवेदी जी के पुत्र की तरह अमेरिका जाये। गुप्ता जी के बेटे से अधिक दहेज मिले, दहेज में स्विफ्ट कार तो मिलना चाहिए। समसामयिक युग में धन सर्वोपरि बन गया है। इसलिए सबके देखा-देखी एवं स्पर्धा की भावना से रामलखन एवं उनकी पत्नी ने अपने बेटे अनमोल से भी वही अपेक्षा की थी। परंतु अनमोल सोचता है कि, "वे मुझे उस नाली में धकेलने के लिए बड़े उत्साहित थे जहाँ हर इन्सान पैसे के पीछे भागने पर इतना आमादा होता है कि खुशियों में जीना तो सिर्फ बचपन के खलिहान में छोड़कर चला आता है। ...वे इंजीनियरिंग को ऐसी पैसों की नाली समझ रहे थे, जिसमें डूबने के बाद व्यक्ति सिर्फ पैसे लेकर ही वापस आता है। पर नाली तो नाली होती है, उसके कीचड़ से कैसे बचा जा सकता है। इस कीचड़ में शामिल होती है पश्चिमी संस्कृति की कुछ गंदगी।"[1]

खाओ, पीओ, मौज करो यह पश्चिमी संस्कृति की देन है। कार्पोरेट जगत में सोमवार से शुक्रवार तक जमकर काम किया जाता है। शुक्रवार की रात पार्टी की होती है, क्योंकि फिर दो दिन अवकाश रहता है। 'पार्टी डे' का मतलब शराब एवं शबाब। अनमोल इंजीनियर है और इस पाश्चात्य संस्कृति का एक अविभाज्य अंग। वह ऑफिस में लंच के लिए जाने वाला ही था कि माँ की हडबड़ाहट भरी आवाज फोन पर सुनाई दी कि उसकी पत्नी की तबीयत अचानक बिगड़ गयी है और वह दर्द से चिल्ला रही है। तभी बेटे अनमोल ने माँ से यह कहा कि वह कैब बुक कर रहा है। जो दस मिनट में घर पहुँच जायेगी। आशिका को लेकर घाटकोपर के साहिल नर्सिंग होम में एडमिट करा दीजिए। वह 45 मिनट में वहाँ पहुँच रहा है। जब वह हॉस्पिटल पहुँचा तब आशिका को प्रसव के लिए ऑपरेशन थियेटर ले जाया गया था। अनमोल को एक ओर पिता बनने की खुशी थी तो दूसरी ओर पत्नी के प्रसव की चिंता थी। ऑपरेशन थियेटर में आशिका थी और इधर बाहर अनमोल भविष्य के स्वप्नों में खोया था। पिता बनने का एहसास था। उसकी आँखों के समक्ष बच्चे की नन्हीं गुलाबी ऊँगलियों का स्पर्श अनुभव होने लगा। उस बच्चे

की शक्ल मन में बनने लगी। आशिका की तरह बड़ी-बड़ी आँखें होगी, उसकी तरह फुले-फूले गाल होंगे, नाक ठीक दादी पर गयी होगी, उसे बेहतरीन स्कूल में पढ़ाया जायेगा।

तभी ऑपरेशन थियेटर से डॉक्टर बाहर आये उन्होंने उसे अपने केबिन में बिठाकर कहा कि उसकी पत्नी आशिका ठीक है। बेटे के बारे में यह सूचना दी कि वह कभी बाप नहीं बन सकता। क्योंकि आपके बेटे का शिश्न अपरिपक्व है और उसके दोनों टेस्टिकल्स भी नहीं है। यह सुनकर अनमोल को एहसास हुआ मानो उसका प्लेन क्रैश हो गया है। वास्तव में यह शॉकिंग न्यूज थी। उसकी स्थिति उसी के शब्दों में, "मेरा शरीर सुन्न पड़ने लगा। नानी सैकड़ों बिजलियाँ एक साथ मेरे ऊपर टूट पड़ी। किसी भयानक अंधेरे गर्त में जैसे मैं धसता जा रहा था। मुझे अपनी आँखों के सामने कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। बस अँधेरा ही अँधेरा। ... भगवान ने ऐसा क्यों किया? मेरे यहाँ पर किन्नर क्यों पैदा किया? अब वह इस दुनिया से कैसे लड़ेगा? मैं उसे कहाँ-कहाँ बचाऊँगा। उस अँधेरे में मेरे सामने बस कुछ दृश्य घूम रहे थे - ट्रेन के शादीवाले मंडप के और ऐसे दृश्य ... जिनकी कल्पना से मैं सिहर उठा। हे भगवान! क्या वह भी सिर्फ एक सैक्स वर्कर बनकर रह जायेगा?"[2]

तभी वह पूर्वदीप्ति स्थिति में अपने पिता रामलखन एवं अपने भाई हर्षा को देखता है जो किन्नर रूप में है। उसके पिता दबंग थे। उनके पास पर्याप्त खेती और लंबी मूँछे थी। इसी कारण बाबूजी की गाँव में प्रतिष्ठा थी। अनमोल का जन्म होते ही बाबूजी ने उस पर इंजीनियर का ठप्पा लगा दिया था परंतु दूसरा बेटा हर्षा उन्हें हर्ष नहीं दे पाया। उस समय अनमोल छह वर्ष का था और यह उसके समझ से परे था कि हर्षा सबसे अलग क्यों है? बाबूजी बेहद दुःखी हो गये थे जैसे आज अनमोल है। परिवार में इतिहास की पुनरावृत्ति हुई है। अंततः बाबूजी को विवश होकर स्वीकार करना पड़ा कि उनके यहाँ जन्मा बालक किन्नर है। एक शाम बाबूजी व्यथित एवं चिंतित घर के सामने कुर्सी पर बैठे थे कि कस्तूरी आई जो आस-पास के गाँवों की किन्नरों की मुखिया थी। कस्तूरी का हुलिया कुछ इस प्रकार था, 'चमकीला सलवार सूट पहने हुए थी। होठों पर डीप मैसन शेड की लिपस्टिक, पाउडर से पुता चेहरा, जिसका रंग शरीर के दूसरे अंगों से मेल नहीं खा रहा था ... मटक-मटक कर चल रही थी और बार-बार न चाहते हुए भी उसके हाथ तालियाँ बजा रह थे। उसके पीछे दो-तीन किन्नर साथी थे। बाबूजी ने उसके आने का प्रयोजन पूछा। पहले तो उसने कहा कि बेटे का जन्म हुआ है नेग लेने आये हैं। वह जो नेग चाहते हैं वे तो ले के ही रहेंगे। बाबूजी को भय हुआ। उन्होंने मतलब जानना चाहा। कस्तूरी पान की लाल-लाल पीक आंगन में थूकते, बाबूजी के निकट आते कहने लगी आपके यहाँ हमरे बिरादरी के भाई ने जन्म लिया है। उसे हमें दे दो। वही हमारा नेग है। तब बाबूजी ने नाराजी व्यक्त की। तब कस्तूरी ने यही समझाया कि जो बच्चा हमारे बिरादरी का है उसे कब तक हमसे दूर रखोगे। बेटी ससुरालवालों को कितनी ही प्रिय हो वह अपने मायके आने पर खुश होती है।

अनमोल अपने छोटे भाई को अपने से अलग नहीं करना चाहता था। वह उसके पास गया उसका लाड़ करने लगा। बाबूजी ने स्पश्ट कहा कि, 'वा तुम्हारी बिरादरी का न होए। तुम अपने नेग का पैसा लो और यहाँ से दफा हो। और फिर यहाँ कभी दिखाई न देना।' इस प्रसंग में उपन्यासकार ने कस्तूरी के माध्यम यही सचाई बयान की है कि, "एक बात नोट कर ले तिवारी। हिजड़े का बाप है तू, हिजड़े का! और इतना आसान न है समाज में एक हिजड़े का बाप बनकर जीना। सुई की नोंक पे रहना होता है! उसकी चुभन से तोरा पैर ही नहीं, तोरा शरीर ही नहीं, तोरी आत्मा तक भी तड़पेगी ... यह समाज तुझे जीने न देगा, या तू खुद मर जायेगा, या फिर तंग आकर खुद चलते हुए उस बच्चे को हमार यहाँ देने आएगा।"[3]

उपन्यासकार भगवंत अनमोल ने बाबूजी की मानसिक स्थिति, उनके अन्तर्द्वन्द्व का सूक्ष्म मनोविश्लेषण किया है। वे सोचते है कि अभी तो किसी तरह वक्त गुजर जायेगा परंतु जब हर्षा का विवाह न हो सकेगा तब वे समाज का कैसे सामना कर पायेंगे। उनके मन में विचार आया कि इन सब प्रश्नों, झंझटों, उसके जीवन की त्रासदी आदि से निपटने के लिए एक ही उपाय है कि इसे मार डाला जाये। हाँ यही सही एवं समीचीन मार्ग है। तभी मन में दूसरा विचार उठता 'नहीं यह सही नहीं है किसी को जीते जी वह भी अपने बेटे को कैसे मारा जा सकता है। उनकी अवस्था हैमलेट के समान हो गयी टू बी और नॉट टू बी। उनका मन दो भिन्न व्यक्तियों में विभाजित हो गया था। एक मन कभी 'हाँ' करता और कभी दूसरा मन 'ना' करता है। आखिर उनके मन ने निर्णय ले लिया 'अब तो बस एक ही रास्ता देखत है, बस ससुरा का आज काम तमाम कर देब। न रही बांस न बाजी बाँसुरी।' तभी पत्नी ने सूचना दी कि वह बाहर दूध लेने जा रही है। बाबूजी बेचैन होकर चूहे मारनेवाली दवा खोज रहे थे। वे जब वह दवा गेहूँ में डाल रहे थे तब बालक अनमोल ने माँ से पूछा ऐसा क्यों करते हैं? तब माँ ने कहा था, इसके डालने से चुहे गेहूँ में नहीं जाते। यह जहर है, इसे खाने से आदमी मर जाता है। उस दिन अनमोल ने बाबूजी को पुड़िया की दवा ग्लास के पानी में मिलाते देखा तब वह घबरा गया और उसने माँ से जाकर इतना ही कहा कि बाबूजी जहर ...जहर। माँ भागी-भागी आई। इधर बाबूजी हर्षा के पालने के पास पहुँच चुके थे परंतु उन्हें आत्मग्लानि और आत्मपश्चाताप हो रहा था। वे सोचने लगे, "कट जायें ऐसे हाथ, जिसने अपने हर्षिता के जबड़े को पकड़ लिया था ताकि मुँह खुल जाये। रुक जायें ऐसी धडकनें, जो अपने बेटे को मारने के लिए तेज़ हो गयी थीं। भाड़ में जाये ऐसा समाज जिसके कारण अपने बेटे को मौत के घाट उतार रहा था वह बाप। ऐसे बाप का नाश हो जो अपने ही बेटे को जहर पिलाने जा रहा था उस बात के लिए जिस में नवजात का कोई दोष न था। ऐसी इज़्ज़त का क्या वजूद जिसमें इन्सानियत ही न हो। अब वह बढ़ चुके थे, एक राक्षस की भाँति अपने ही बेटे को जहर पिलाने की ओर।...

प्रकृति सहम गयी थी,

हवाओं ने भी दिशा बदल ली थी

इन्सानियत शर्मसार हो गयी थी,

जब एक बाप ने बच्चे की गर्दन पकड़ ली थी।"[4]

बाबूजी के हाथ बच्चे के मुँह में गिलास से जहर डालते हुए काँप रहे थे। फिर भी मन में एक ही निर्णय था, हर्षा की हत्या का जुनून बिल्कुल एक खूनी की तरह। वास्तव में खूनी कोई व्यक्ति नहीं होता, यह मानसिकता होती है। जहाँ व्यक्ति सही या गलत की पहचान नहीं कर पाता है। तभी अचानक उनकी पत्नी आ गयी यदि एक सेकेंड भी देर हो जाती तो हर्षा की मौत हो जाती। माँ का वात्सल्य, माँ का हृदय बोल उठा 'अगर मारना ही है तो पहले हमें मारो। हमारी लाश मा चढ़के तुम हमरे बेटा को मार सकते हो ... आखिर का गुनाह किया है इसने? फिर माँ ने यही कहा कि गुनाह तो हम दोनों ने किया है, इसे पैदा करके। तुम्हारे खराब वीर्य का दोष है। मारना है तो खुद को मारो, देखे कितने बड़े वीर हो।' माँ की ममता ने क्रोध का स्वरूप लिया – 'खबरदार, आज के बाद हमारे बेटवा की तरफ देखा भी तो, पुलिस मा सीधा पहुँचेंगे?'

अनमोल ने अपने बेटे का नाम सूर्या साउथ इंडियन फिल्म सूर्या के नाम पर रखा था ताकि वह शत्रु पर विजय प्राप्त करें। दादी माँ सूर्या को खूब चाहती थी। हर समय उसी के साथ रहती। आशिका तो सूर्या को अपने प्राण से ज्यादा चाहती थी। उसे ऐसी संतान को जन्म देने का कोई पश्चाताप दृष्टिगत नहीं होता था। एक दिन उसने पूछा कि, 'अनमोल, सूर्या के जन्म की खुशी में कोई फंक्शन रखा जाना चाहिए। तभी अनमोल को याद आया कि माँ ने बाबूजी को कहा था 'सुनते हो, हर्षा के जनम मा कुछ लोगन का बुला के न्यौता दे दिया जाए। सब कहता है बेटवा हुआ है, कुछ मिठाई तक न खिलाओ।' तभी बाबूजी तुनक कर बोले, "अरे, आज के बाद न्यौता का नाम न ले लियो। तुम किसके खातिर न्यौता देना चाहती हो ? जो कुछ सालों बाद हमारी हर जगह नाक कटवाएगा, बेइज़्ज़ती करवाएगा? हर कोई इसे हिजड़ा-हिजड़ा पुकारेगा और मुझे हिजड़े का बाप ... एक तो सिर का खोखट जिन्दा रखे हैं। ऊपर से अपने खोखट के लिए हमें परेशान कर रही है।"[5]

अनमोल ने बारहवीं की परीक्षा दी थी और हर्षा नौवीं पास करके दसवीं में पहुँच गया था। माँ ने बातों-बातों में कहा कि अनमोल जब पढ़ लिखकर नौकरी करेगा तो उसके लिए मास्टरनी बहू लायेंगे जो उसकी सेवा करेगी और कमाने में पति की मदद करेगी। उसके बाद हर्षा की शादी कर देंगे। ऐसी बहू लायेंगे जो हर्षा को बहुत प्यार करेगी। इस बात पर हर्षा मायूस हो गया। उसे तो लड़की अच्छी नहीं लगती है। एक दिन अनमोल को हर्षा की डायरी मिली। उसे आश्चर्य हुआ कि हर्षा डायरी लिखता है। उसने डायरी के प्रथम पृष्ठ पर ही लिखा था, 'मैं जो दिखता हूँ, वह हूँ नहीं और जो हूँ, वह दिखता नहीं।' हर्षा ने अपनी डायरी में उसके जीवन की व्यथा, उसकी मानसिकता लिखी थी। वह अपने दिन का आरंभ भगवान का नाम लेकर करता था जिस भगवान ने उसे हाथ, पैर, आँखें दी हैं। पर बाबूजी उठते ही चिल्लाते थे कि दिखा दिया, सुबह-सुबह अपना मनहूस थोबड़ा। इस प्रकार अपमान, उपेक्षा सहने की उसे आदत हो गई थी। यह सोचता है कि जिस उम्र में पिता अपने पुत्र के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं उस उम्र में उसे उपेक्षाओं का शिकार बनना पड़ रहा था। बाबूजी बात-बात पर मुझे आँखें दिखाते। मार-पीट का इस कदर आदी हो चुका हूँ कि मत पूछिए। खाने-पीने की तरह यह मानो मेरी रोजमर्रा की ज़िन्दगी का एक अभिन्न हिस्सा बन गई है। ज़िन्दगी की हर सुबह कुछ शर्तें लेकर आती है और ज़िन्दगी की हर शाम तजुर्बा दे जाती है।

स्कूल में भी उसे उपेक्षा, व्यंग्य सहने होते हैं। हर्षा को स्वयं के लिए स्त्री-लिंग भाषा भाती है। जैसे-'जाता हूँ' के स्थान पर 'जाती हूँ'। स्कूल के सारे बच्चे दुष्ट हैं जो उसे पास में नहीं बिठाते और रीतिका मैडम तो उसका घोर अपमान करती है। वह तीव्र व्यंग्य प्रहार के साथ कहती है कि अगर किसी ने बदमाशी की तो उसे हर्षा के पास बैठा दूँगी। तब हर्षा को अमन अच्छा लगता था। उसके आकर्षक व्यक्तित्व से हर्षा उसकी ओर आकर्षित है। हर्षा के शब्दों में, "अब मुझे पूरी तरह विश्वास हो गया था कि मैं लड़का नहीं हूँ। वास्तव में मैं जो दिखता हूँ, वह नहीं हूँ। उस समय मुझे इतना तो एहसास हो चुका था कि मेरी देह में एक ऐसा मन निवास करता है जो लड़की का है। इसलिए मुझमें सभी लड़की सुलभ गुण प्रकट हो रहे हैं। लड़की का यह मन लड़कों की ओर आकर्षित होता है। उसके सीने में उसे यह दुनिया दिखती है, जो उसे सुरक्षित रखेगी।"[6]

उपन्यासकार ने किशोर मन के मनोविज्ञान को व्यक्त किया है। उसमें अपराध भाव जागृत होता है। अपराध यदि है तो ईश्वर का है, उसके माता-पिता का है और बिना अपराध के वह सजा भुगत रहा है। संपूर्ण उपन्यास में हर्षा की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण दृष्टिगत होता है। हर्षा ने एक निर्णय लिया कि वह कल स्कूल के बहाने पास के कस्तुरी मोहल्ले में जाकर पता लगायेगी कि आखिर वे अलग क्यों रहते हैं ? सड़क पर भीख क्यों माँगते है? उसे वहाँ कस्तुरी ने देखा और पूछा कि वह किसका बेटा है। रामलखन नाम बताने पर उसे पास बिठाया। पीठ पर हाथ फेरते हुए समझाया इतना डरा हुआ काहे है? हम

तुम्हारी सहेली, भाई या जो तू माने वो। अंत में कस्तुरी ने हर्षिता को आश्वस्त करते हुए यही कहा कि वह पढ़े-लिखे, नौकरी करे फिर भी अगर उसे लगे कि वह चैन से जी नहीं पा रहा है, तो उसका घर उसके लिए खुला है।

अनमोल ने मुंबई ट्रांसफर ले लिया। यहाँ हर्षा हर्षिता बनकर अपने समुदाय के साथ रह रहा था। बाबूजी का निधन हो चुका था। अब अनमोल माँ को अपने पास ले आया था। एक दिन दोपहर को एक किन्नर ने आकर उसे समाचार दिया कि कुछ दिनों पहले हर्षिता ने फाँसी लगा ली। आपको यह डायरी देने के लिए कहा है। अनमोल हर्षिता के निधन पर अत्यंत दुःखी हुआ। हर्षिता अपने समुदाय के साथ कई वर्षों से रह रहा था और अक्सर अपने भाई से मिलने आता रहता था। हर्षा की डायरी से उसके दर्दभरे जीवन की दास्ताँ ज्ञात हुई। उस पर स्कूल से आते समय एक बदमाश ने बलात्कार किया था। घर आने पर धूल से सने कपडे, हर्षिता की बदहवास हालत देखकर बाबूजी ने उसे डाँटा और उसे सच बताना पड़ा तब तो बाबूजी और भी आक्रमक हो गये। इस घटना के पश्चात हर्षिता अपने समुदाय के पास पहुँच गयी। हर्षा से हर्षिता बनना उसकी विवशता एवं आवश्यकता दोनों थी। अब हर्षा तो एक किन्नर के रूप में थी। सबके साथ तैयार होती बसों में, ट्रेन में पैसे वसूलती थी। उसी के शब्दों में, 'बिलकुल वैसे ही जैसे आप रोज देखते हैं सड़क पर, बसों में, अपने घरों के पास या फिर मार्किट में। साड़ी पहने हुए, होठों पर लाल लिपस्टिक, हाथों में चूड़ियाँ, मटकती कमर और ताली बजाते हाथ। मैं चढ़कर लोगों से पैसे वसूल रही थी, लोगों के चेहरों पर हाथ फेर रही थी वैसे भी मुझे चिकने लड़के अच्छे लगते हैं। इसी बहाने उन्हें छूने का मौका भी तो मिल जाता है।' वह पैसे वसूल रही थी कि उसकी नज़र एक बुजुर्ग पर पड़ी, वे उसकी तरफ ही देख रहे थे। उनकी आँखें भरी हुई थीं और सिर झुका हुआ था। वे बाबूजी थे। उसी दिन उसने मुंबई जाने का निर्णय ले लिया।

एक दिन बाबूजी का अनमोल को फोन आया कि उनके खेत को अपने नाम बनाये रखाने के लिए पैसे चाहिए। अनमोल ने 40 लाख में एक फ्लैट देखा था अतएव फिलहाल वह रुपये का प्रबंध कैसे कर सकेगा। खेत को बनाये रखने के लिए पाँच लाख रुपये चाहिए थे। जब यह बात हर्षिता को अनमोल के द्वारा ज्ञात हुई तब हर्षिता के पास केवल 50 हजार रुपये थे। उसने पैसे की मदद तो नहीं की परंतु यह कहा कि अगले एक माह तक वह जो कमाएगी, उसे पूरा रख ले। अब हर्षिता ने बाबूजी के लिए रातदिन परिश्रम किया। दिनभर सड़कों पर भीख माँगती रात में कुछ जगहों पर नाचने जाने लगी। उसने एक लाख रुपये जोड़ लिये। अब उसके पास एक लाख पचास हजार रुपये हो गये थे। अब हर्षा रामालक्ष्मी के समान रात को भी धंधा करने लगी जिसमें उसे पर्याप्त धन मिलने लगा। आखिर उसने आठ लाख रुपये एकत्र कर लिये और बाबूजी के नाम खेत करवा दिये। परंतु हर्षिता को गलत काम का नतीजा गलत ही मिला - उसे एड्स हो गया। वह एचआईवी पॉजिटिव थी। उसी के शब्दों में, 'मैंने ठान लिया था कि इससे पहले किसी और को पता चले कि मुझे एड्स है, मेरा गुमनामी में खो जाना ही बेहतर होगा।' उसने फैसला किया कि उसे यह दुनिया छोड़ कर जाना है। आज उसका अंतिम दिन है। आज उसे तीन काम करने हैं पहला भैया से मिलना है, दूसरा बाबूजी को खुशी देना है और तीसरा उसे इस जीवन से मुक्ति प्राप्त करनी है। हर्षिता ने अपना अंतिम पत्र अनमोल को लिखा जिसमें भाई के द्वारा उसे मिले प्रेम पर कृतज्ञता व्यक्त की थी। यह यथार्थ भी लिखा कि ज़िन्दगी में हर किसी में कमी होती है। ज़िन्दगी 50-50 होती है। जैसे दिन और रात, अँधेरा और प्रकाश, समाज की परवाह करते-करते आप यह भी भूल गये कि मैं इस भयंकर दलदल में आज फँस गयी हूँ। इसीलिए में छोड़कर जा रही हूँ, आपको आपके समाज के साथ।

बाबूजी ने हर्षा पर कड़ी नजर रखी थी। मौका मिलते ही उसे डाँटते-फटकारते थे परंतु अनमोल ने अपने बेटे के साथ कभी दुर्व्यवहार नहीं किया। कभी उसे हीन भावना से नहीं देखा। वह किन्नर है अतएव उस पर अतिरिक्त लाड़-प्यार किया कि उसको हीन भावना महसूस न हो। अनमोल एक जिम्मेदार पिता है, विवेकशील है। इसीलिए उन्होंने सूर्या को हर काम की स्वतंत्रता दी थी। उन्हीं के शब्दों में, "मुझे मालूम था कि उसके अंदर अलग तरह के हार्मोन्स जन्म ले रहे थे, जो हमारे शरीर के हार्मोन्स से बिलकुल अलग थे। खाने-पीने, पहनने से लेकर मिलने तक। मैं उसे किसी भी तरह इस बात का एहसास नहीं होने देता था कि वह हम सबकी तरह सामान्य नहीं है। ... मैंने कभी उसे खुद के चश्मे से देखने की कोशिश नहीं की बल्कि हमेशा उसके नजरिए से उसे देखने का प्रयास किया।"[8]

समय बीतता गया। सूर्या बड़ा हो गया। उसने मुंबई के एक कॉलेज से क्रिमनॉलॉजी की पढ़ाई पूरी कर ली। पिता के नाते अनमोल उसे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा देते रहे। वह एक प्रायवेट डिटेक्टिव एजेंसी खोलना चाहता था। उसने पुलिस कमिशनर को एप्लीकेशन भी दे दी थी। मुंबई पुलिस उनके घर आकर जाँच-पडताल भी कर गयी थी। पुलिस कमिशनर ने दो लोगों को बुलाया था जिनमें से उन्हें किसी एक का सिलेक्शन करना था। अनमोल खुश थे जिसे असामान्य व्यक्ति माना जाता था, जिसे अक्सर समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था आज वही सूर्या अपने जीवन के स्वप्न पूर्ण करने जा रहा है। आज उसका इंटरव्यू है। अनमोल ने उसे सकारात्मक ऊर्जा देने का प्रयास किया। उसे याद आया कि वह अपने भाई हर्षा के लिए कुछ नहीं कर पाया था। भगवान ने उसे दूसरा अवसर दिया है। वे सभी गलतियाँ जो बाबूजी, समाज एवं स्वयं अनमोल से हुई थीं, उसे सुधारने का वक्त आ गया था। इंटरव्यू जाते समय सूर्या को अनमोल और माँ का आशीर्वाद मिला था। यह तो अनमोल का बड़प्पन है जो उसने समाज से लड़कर दिखा दिया था कि किन्नर भी सामान्य लोगों जितने काबिल होते हैं। सूर्या का सिलेक्शन हो गया था। इसमें एक महिला के साथ आये सूर्या के हम उम्र एक युवक का भी योगदान था।

अब कौतुहल यह है कि वह महिला और उसके साथ आया उसका पुत्र कौन था ? इसके लिए उपन्यास में वर्णित अनमोल एवं अनाया की प्रेम-कथा समझनी होगी। उपन्यास में हर्षा, सूर्या की किन्नर कथा के साथ एक प्रेम कथा भी समानान्तर चली है। जिसमें अनाया के जीवन से नारी-विमर्श भी दृष्टिगत होता है। अनाया का जीवन संघर्ष-गाथा ही है।

अनमोल एवं अनाया के प्रेम का प्रारंभ कॉफी टेबल से हुआ था। अनाया की व्यथा यह है कि जन्म से ही उसके गाल पर धब्बा है, तब अनमोल उसे समझाता है कि भगवान किसी के साथ मजाक नहीं करता है। वह हर किसी में कुछ कमियाँ देता है और कुछ अच्छाइयाँ। कमियाँ व्यक्ति को मजबूत बनाती हैं और अच्छाईयाँ उसे आगे बढ़ाती हैं। लोगों को लगता है कि सामनेवाले की ज़िन्दगी बहुत अच्छी है पर ऐसा होता नहीं। हर किसी की 'ज़िन्दगी 50-50' होती है। तब अनाया अपना यही दु:ख व्यक्त करती है कि लोग उससे गाल पर के दाग के संबंध में पूछते नहीं है, पर ऐसी नजर से देख है कि वह आहत होती है। अनाया का अपना दर्द है। वह भी चाहती है कि उससे कोई प्रेम करें। मेरा साथ हर पल हो, जब उसे उसकी जरुरत हो। परंतु उससे प्रेम कौन करेगा? सैक्स सभी करना चाहते हैं पर प्रेम कोई नहीं। क्योंकि हर कोई एक सुंदर लड़की की तलाश में है। सामीप्य के कारण अनमोल एवं अनाया एक दूसरे के प्रेमी बन गये थे। एक दिन अनमोल ने आहिस्ता से उसके दाहिने गाल को अपनी तरफ करके उस बर्थ मार्क को चूम लिया। वह स्तब्ध हो गयी उसकी आँखों से खुशी के आँसू बहने लगे। इन दोनों का प्रेम-संबंध चरम पर था। एक दिन अनमोल ने जीवन का व्यावहारिक पक्ष अनाया को समझाया, 'देखो अनाया हम दोनों बिलकुल

अलग हैं, हम दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और करते रहेंगे, पर शादी का जो बंधन होता है, अकेले नहीं लिया जाता। यह दो परिवारों का और उनकी संस्कृति का मिलन होता है। तुम नहीं देखती हम दोनों में कितनी असमानताएँ हैं।'

समय बीतता गया एक दिन अनाया ने सूचना दी कि वह नौकरी छोड़ रही है, उसकी परसों सगाई है। उसने अनमोल से यह जानना चाहा कि वह कौन-सी वजह है जो वह उससे विवाह नहीं करना चाहता है। तब अनमोल ने बताया कि उसका एक भाई है। गाँव में बाबूजी के पास रहता है। परंतु वह किन्नर है। अतएव वह शादी के बारे में सोच नहीं पा रहा है। तब अनाया ने यही कहा कि, "अनमोल में समझ सकती हूँ तुम्हारे दर्द को। तुम्हारे भाई और परिवारवालों ने जो दर्द झेला है, उसे भी। देखो, मुझ में भी कमी है। लोगों ने आज तक एक भी मौका नहीं गवायाँ जिससे मेरा मजाक उड़ाया जा सके। आखिर ये लोग क्यों नहीं समझते कि शारीरिक कमियों के लिए हम खुद जिम्मेदार नहीं होते ! क्या ऐसा कोई रास्ता नहीं कि ऐसे संवेदनहीन लोगों में थोड़ी-सी संवेदना जाग जाये, और मेरे और हर्षिता जैसे तमाम लोग एक सामान्य जीवन बिता सके।"[9]

एक दीर्घ अंतराल के पश्चात् अनमोल अपने पुत्र सूर्या के नौकरी के संदर्भ में एक महिला से मिलने गया था क्योंकि उसका पुत्र स्पर्धा में था। अचानक फ्लैट का दरवाजा खुलते ही जो महिला सामने आयी वह अनाया थी। वे एक दूसरे को अट्ठाईस वर्ष के बाद मिल रहे थे। वह अनमोल से ही गर्भवती हुई थी और उसने अपने बेटे का नाम अनमोल की याद में अनमोल ही रखा था जो अब सूर्या के साथ पुलिस कमिशनर के पास इंटरव्यू देने आया था। उसने वहाँ से आकर बताया कि जो दूसरा लड़का आया था उसके रेज्यूम पर उसकी नजर गई तो उसने देखा कि सेक्स के कॉलम में यह अन्य पर टिक किये हुए था। तभी मुझे आपके किन्नर भाई हर्षिता का स्मरण हो आया जिसकी कथा आपने सुनायी थी। मैं और वह बिना इंटरव्यू दिए लौट आये।

अनमोल ने अनुभव किया कि अनाया ने अपने बेटे को एक बेहतरीन इन्सान बना दिया था। उससे भी बेहतर। अनमोल अपने आँसूओं को संभाल नहीं सकता था। उसके एक बेटे ने दूसरे बेटे सूर्या के लिए कुर्बानी दी थी। अनाया ने अनमोल के सामने दो शर्तें रखी एक तो उसे मिलने की कभी कोशिश न करना क्योंकि वह नहीं चाहती कि ज़िन्दगी के अंतिम पड़ाव पर हम अपने परिवार को धोखा दे और दूसरी शर्त कि वह कभी भी अपने बेटे अनमोल से मिलने का प्रयास न करें। अनाया के यहाँ से निकलते हुए अनमोल के मन में एक तरफ फिफ्टी परसेंट खुशी और फिफ्टी परसेंट किये पर पश्चाताप हो रहा था। वह सोच रहा था कि कैसे बिताये होंगे अनाया ने अट्ठाईस साल? कैसे पाला होगा समाज से लड़कर अपने बेटे को?

उपन्यास की मुख्य कथा एवं चरित्र किन्नर जीवन से संबंधित रहे हैं। अनमोल को संतोष एवं शांति यही है कि अपने छोटे भाई हर्षा उर्फ हर्षिता के साथ जो अन्याय हुआ था वह उसने अपने किन्नर पुत्र सूर्या के साथ नहीं किया। अनमोल को लगा मानो हर्षिता मुस्कुराते हुए उसे ऊपर से देख रही है। उसकी आँखों में अपने भतीजे सूर्या की सफलता पर खुशी के आँसू हैं। परंतु अनमोल के मन में एक पश्चाताप, एक कसक रह गयी थी कि वह अनाया के साथ हुए अन्याय की भरपाई नहीं कर पाया। खुशी के साथ भी सालता हुआ दुःख, ज़िन्दगी आखिरकार होती ही है 50-50। उपन्यास की सफलता यही है कि आखिरकार अनमोल ने अपने किन्नर पुत्र को एक ज़िन्दगी देकर सिध्द किया है कि यदि किन्नरों के प्रति संवेदनात्मक दृष्टि हो, उनके प्रति आत्मीय भाव हो तो वे भी सक्षम सिध्द हो सकते हैं।

संदर्भ :

1. ज़िन्दगी 50-50 - भगवंत अनमोल, पृ. 5-6

2. पूर्ववत् - पृ.28
3. पूर्ववत् - पृ.35
4. पूर्ववत् - पृ.41
5. पूर्ववत् - पृ.53
6. पूर्ववत् - पृ. 119
7. पूर्ववत् - पृ. 166
8. पूर्ववत् - पृ. 153
9. पूर्ववत् - पृ. 145

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

अम्बेडकरवादी (दलित) उपन्यासों में चित्रित शोषित समुदायों का जीवन

प्रा.डॉ.रविंद्र आर.खरे

हिंदी विभागाध्यक्ष

कला,वाणिज्य एवं कॉम्प्युटर अप्लीकेशन, महिला महाविद्यालय,डोंगरकठोरे, ता.यावल जि.जळगाव (महाराष्ट्र)

प्रस्तावना :-

भारतीय वर्णव्यवस्था में सबसे नीचे शुद्र आते हैं, और शूद्रों में पिछडों की भी गिनती होती है। परन्तु 'दलित' शब्द जिन लोगों के लिए प्रयुक्त हो रहा हैं, उनमें पिछड़ा वर्ग सम्मीलित नहीं हैं। 'दलित' हम उन लोगों से कह सकते हैं कि,जो गाँव और शहर के बहार बस्ती और झुग्गी झोपड़ियों में नारकीय जीवन जिने के लिए विवश हो रहे हैं। उनके साथ छुआछूत का व्यवहार किया जा रहा हैं। जिसे समाज में जिने का तक अधिकार नहीं था। जानवर से भी बदतर जीवन जिने को मजबूर यह वर्ग शुद्र के रूप में अभिहीत हुआ। बाबासाहेब डॉ.भीमराव आम्बेडकर के अथक संघर्ष एवं संवैधानिक व्यवस्था के कारण समाज के निचले पायदान का व्यक्ति आज जागृत होने लगा हैं। अपने मानवीय अधिकारों के प्रति सचेत हो रहा हैं। साहित्य में दलितों की पीड़ा कभी अभिव्यक्त नहीं हो पाई थी,लेकिन दलित साहित्यकारों ने आज स्वयं अपने भोगे हुए यथार्थ का अपने साहित्य में सजीव चित्रण किया हैं। वर्तमान साहित्य में आज दलित विमर्श के रूप में एक मुहीम सी चल पड़ी हैं। सदियों से उपेक्षित, तिरस्कृत, दबी कुचली मानवता ने आज जीवन का मर्म सीख लिया हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्य के क्षेत्र में साहित्यकार अपने विचार और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए विभिन्न विधाओं का उपयोग करते हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, जीवनी, आत्मकथा एवं कविताओं में दलितों के जीवन को उजागर किया जा रहा हैं। जिसमें उपन्यास यह सशक्त विधा बनकर उभरती हैं दलित उपन्यास व्यक्ति विशेष पर केन्द्रित न होकर पूरे समाज पर केन्द्रित हैं। दलित उपन्यासकारों ने अधिकतर उपन्यासों का कथानक समाज में घटित वास्तविक घटनाओं का सजीव चित्रण हैं। दलितों में यह साहस डॉ.भीमराव आम्बेडकर के संघर्ष और दलित आन्दोलन के प्रचार प्रसार का सफल परिणाम हैं। दलित अपनी व्यथा- कथा स्वयं लिखने पढ़ने लगे। अपनी आत्मकथा, उपन्यास और कविताओं के माध्यम से व्यक्त होने लगे हैं। दलितों की प्रगति और उनमें होनेवाले परिवर्तन ही आम्बेडकरवादी विचारधारा का मूल हैं। यह कहना तर्कसंगत होगा कि दलित चेतना ही दलित साहित्य का आधार है।

उद्देश्य :-

- प्रस्तुत शोधालेख के द्वारा हिंदी के प्रतिनिधि उपन्यासों में शोषित समुदायों का यथार्थ जीवन का विश्लेषण करना।
- अम्बेडकरवादी (दलित) उपन्यासों में चित्रित शोषित समुदायों का जीवन उनकी समस्याएँ एवं उन पर होनेवाले अन्याय -अत्याचारों को भारतीय समाज के सामने उजागर करना।
- अम्बेडकरवादी (दलित) उपन्यासों में चित्रित शोषित समुदायों की सामाजिक स्थिति और उनके सामजिक प्रश्नों से परिचित करवाना।
- अम्बेडकरवादी (दलित) उपन्यासों के माध्यम से चित्रित शोषित समुदायों की आर्थिक स्थिति एवं जातिभेद के कारण आयी निर्धनता तथा आर्थिक विषमता से परिचित कराना।

विषय विवेचन :-

प्रस्तुत शोधालेख के द्वारा अम्बेडकरवादी (दलित) उपन्यासों में शोषित समुदाय का जीवन चित्रित हुआ हैं जिसमें १) दलितों का सामाजिक जीवन :- अ) दलितों के प्रति सवर्णों की मानसिकता आ) दलितों में जातिभेदता इ) दलित नारियों का जीवन ई) दलितों पर शिक्षा का प्रभाव

२) दलितों का आर्थिक जीवन:- अ) दलितों में निर्धनता आ) आर्थिक विषमता में दलितों का जीवन इ) आर्थिक मुक्ति के लिए दलितों का संघर्ष इन प्रमुख मुद्दों पर विवेचन किया जायगा |

दलितों का सामाजिक जीवन :-

हिंदी दलित उपन्यासों में दलित साहित्यकारों ने सामाजिक समानता को लेकर दलितों की सामाजिक स्थिति एवं उनके सामाजिक प्रश्न को अपने उपन्यासों में चित्रित करके उनको न्याय देने का प्रयास किया हैं | भारतीय समाज व्यवस्था में जो शुद्र वर्ण हैं आज भी उन पर होनेवाले अन्याय -अत्याचार विभिन्न माध्यमों से सहता आ रहा है, उसे ही 'दलित'वर्ग की संज्ञा दी जा रही हैं |

दलितों के प्रति सवर्णों की मानसिकता :-

भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों के प्रति सवर्णों की मानसिकता सदैव छुआछुत एवं जतिभेदता की ही रही हैं | जातिभेद के कारण दलितों को हमेशा ही सवर्णों से अपमानित,प्रताड़ित एवं उत्पीडिन का शिकार होना पड़ा हैं | जो दलित साहित्य के उपन्यास विधा में दिखाई देता हैं|

'छप्पर' उपन्यास का सुक्खा ब्राह्मणों के जातीयता का शिकार होता हैं| सुक्खा अपने पुत्र चन्दन को शिक्षित कराके उसके भविष्य को सफल बनाना चाहता हैं | इसी कारणवश वह अपने पुत्र चन्दन को शहर पढ़ने भेजता हैं, तो पुरे मातापुर गाँव में खलबली मच जाती हैं| गाँव का जमींदार हरनाम सिंह और ब्राह्मण काने पंडित की संकीर्ण सवर्ण मानसिकता ने सुक्खा के लिए बहुत बड़ी समस्या खड़ी करवा देते हैं| काने पंडित धर्म का हथियार लेकर कहता हैं, "प्रायश्चित करना पड़ेगा| तुझे सुक्खा प्रायश्चित| जल्दी से अपने बेटे को शहर से वापस बुला और प्रायश्चित करने का उपाय कर |"१ सुक्खा के बेटे को धर्म की आड़ लेकर और जमींदार हरनाम सिंह अपनी जमींदारी का दौस जमाकर खेत - खलियानों में मजदूरी नहीं करने देते उसे पंचायत बुलाकर गाँव से बेदखल करने की बात करते हैं | यह दबाव केवल सुक्खा चमार पर नहीं था पुरे दलित वर्ग पर था| 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में गाँव के उपेक्षित समाज की प्रतिहिंसा की घटनाएँ निरंतर बढ़ती ही जा रही हैं| आखिर में बंसी सवाल उठाता हैं, "आखिर उनके ही साथ यह सब क्यों होता हैं ?आजादी के बाद भी क्यों लोग जातियों की बात करते हैं | एक – दुसरे को छोटा -बड़ा समझते हैं| जात -पात, छुआछुत का आखिर अंत कब होगा ...?लोगों को दुःख होता हैं हमारी आजादी से | पशु -पक्षियों की आजादी उन्हें भाती हैं, चिडियों को वे पिंजरे से मुक्त कर देते हैं, पर हमारी मुक्ति के सवाल पर चुप्पी साध लेते हैं |"२ इससे स्पष्ट होता हैं कि सवर्णों की मानसिकता में परिवर्तन नहीं दिखाई देता हैं| हमें स्वतंत्रता मिलकर कही साल गुजर गये पर दलितों के प्रति उनकी मानसिकता में आज भी परिवर्तन नही आया हैं| स्वतंत्रता आन्दोलन के समय डॉ.भीमराव अम्बेडकर ने कहा था की हमें पहले आजादी अपने ही देश के लोगों से चाहिए | जिन्होंने वर्णव्यवस्था के नाम पर दलितों का शोषण किया है| हमें उनसे आजादी चाहिए |

आ) दलितों में जातिभेदता :-

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सवर्णों ने सदियों से दलितों के साथ जातिभेद करते आये है, परन्तु दलित ही आपस में जातिभेद करते हैं यह स्थिति भयावह हैं | प्रत्येक दलित जात दुसरी दलित जाती से श्रेष्ठ समझती हैं | 'उधर के लोग' उपन्यास में जर्मन से मिस्टर पी.सी.वेबर जो भारत की जातिव्यवस्था पर अपना एक शोध करने आए हैं | जब प्रोफेसर अपने दोस्तों का परिचय मिस्टर वेबर से करवाता हैं तब सुशील सीधे वेबर से कहता हैं, "मैं भंगी हूँ,मिस्टर वेबर ...यू नो भंगी मीन्स स्वीपर| चमार और खटीक जैसी- अछूत जातियाँ भी हमसे छुआछूत करती हैं|" ३ स्पष्ट हैं की भारत की जातिव्यवस्था में जो जातियाँ अछूत होने की पीड़ा सदियों से सह रही हैं, वही जातियाँ आपस में जातिभेद करती हैं| उपन्यास के सभी दलित पात्र उच्च-नीचता की चर्चा करते है,किस जाति ने कितना आरक्षण लिया और कौनसे जाति ने डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर के विचारों को अपनाया नहीं या विरोध किया|

'मुक्तिपर्व' उपन्यास का नायक सुनीत ने करतारा भंगी के बेटे का स्कुल में दाखिला देने में साहयता की थी इसलिए करतारा सुनीत से बहुत खुश था| जब भंगी करतारा चमार सुनीत के चमार टोले में उनके घर आता हैं,तब चमार टोले के सभी लोग उसे आश्चर्य से देखते हैं | करतारा

रास्ते में चलते - चलते सुनीत से कहता है, "सुनीत बेटे हम सब एक ही परिवार के लोग हैं। पर हम भी जात -पाँत के भेदभाव में बंटे हैं।" ४ इससे स्पष्ट हैं कि चमारों और भंगियों में जातिभेद हैं, परन्तु जब करतारा सुनीत के घर आता हैं तब सुनीत के पिता बंसी भंगी करतारा को अभिवादन करता हैं, इतना ही नहीं सुनीत उसे चाय का प्याला देता हैं तो करतारा का रोम-रोम पुलकित हो जाता हैं । आम तौर पर चमारों और भंगियों में जाति भेद होने के कारण ऐसा होता नहीं था। परिवर्तनवादी विचारों का बंसी और उसका बेटा सुनीत कभी आपस में जातिभेद नहीं मानते हैं । बाबासाहब डॉ.भीमराव अम्बेडकर ने महाड़ के मोर्चा में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि हमें अपने आपस के ऊँच-नीच और छोटे-बड़े का भेदभाव शीघ्र से शीघ्र मिटाने होंगे तभी हमारी उन्नति हो सकती हैं । आज भी कही -कही जगह पर दलितों में ऊँच-नीच और जाति भेद का भाव दिखाई देता हैं ।

इ) दलित नारियों का जीवन :-

प्राचीन काल से लेकर आज तक नारी की स्थिति बहुत ही दयनीय रही हैं । वर्णव्यवस्था के समय से नारी को हमेशा उपभोग की वस्तु समझा जा रहा था । ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ही जाति और वर्ग के आधार पर होने वाले शोषण की मूल धारा हैं इस व्यवस्था का सीधा शिकार दलित होता हैं। दलितों में भी दलित नारी सामाजिक व्यवस्था के निचले पायदान पर खड़ी मिलती हैं। दलित महिलाएँ गरीबी, घरेलू हिंसा, उत्पीडन और सवर्णों के शारीरिक शोषण का शिकार बनती हैं । 'मिटटी की सौगंध' उपन्यास का ठाकुर मोहन सिंह दलित स्त्री शीला के साथ बलात्कार करता हैं,शीला इस मर्मान्तक यातना को झेल रही हैं। ठाकुर के विरोध में कोई नहीं जाता हैं, सभी दलित बेबस और लाचार होकर बाते करते हैं कि, "कुछ नहीं होने वाला...हम गरीबों की इज्जत यूँ ही लुटती रहेगी ...दलित होना तो कलंक है ही ...उस पर दलित औरत होना और बुरा हैं ...हर आदमी हम लोगों की बहन -बेटियों को बुरी नजर से देखता हैं।"५ इस प्रकार सवर्णों की दृष्टि में दलित नारी की इज्जत की कोई कीमत नहीं है । पूंजीपतियों ने अपनी संपत्ति के बल पर हमेशा ही दलितों को दबा कर रखना चाहते रहे है ।

'सुअरदान' उपन्यास में दलितों से बेगार की मजदूरी करवाई जाती है, कम दाम देकर ज्यादा मजदूरी करवाना। ईट -भट्टी का मालिक वहाँ पर मजदूरी करने वाले धरमु पासी को ईट भट्टी के काम करने के लिए जबरदस्ती से रोकता हैं और न रुकने पर उसे पिटता भी हैं तब धरमु पासी की नवविवाहिता पत्नी इस शोषण का विरोध करती हैं, "क्यों नहीं जा सकते? नाम मात्र की मजदूरी देते हो, लेकिन हम लोगो से काम रात - दिन करवाते हो । हम जाएँगे ।"

तू साली ! बहुत पटर -पटर बोलती हैं ।चल मेरे कमरे में ।"६ इस तरह मालिक जयंत सिंह सन्नों का हाथ पकड़कर घसीटता हुआ अपने कमरे में ले जाते हुए । सभी दलित मजदुर औरते उसकी मदत करते हैं । सभी दलित महिलाएँ उसके अन्याय -अत्याचार का विरोध करते हुए उसे सबक सिखाते हैं। 'मिस रमिया' उपन्यास के दलित महिला रमिया का २६ जनवरी के अवसर पर रमिया द्वारा अपने स्कुल के बच्चो को प्रोग्राम में हिस्सा न लेने देने के विरुध्द में जायज प्रश्न उठाने पर ब्राह्मणवादी मानसिकता के पोषक माधो चाचा और ए.के.सिंह जैसे लोग गालियाँ देकर उसकी आवाज को दबाना चाहते हैं, "चुप -चुप एकदम चुप .....हरामजादी अपने आप को क्या समझती हैं?"। ७ एक सवर्ण पुरुष के द्वारा दलित स्त्री की अभिव्यक्ति पर अपमानजनक भाषा का प्रयोग यह जाहिर करता हैं कि आज भी पढ़ी -लिखी नौकरी पेशा युक्त दलित महिलाओं को कही -न -कही ब्राह्मणवादी सोच के पुरुषों के ऐसे दुर्व्यवहार का शिकार होना पड़ता हैं ।

ई) दलितों पर शिक्षा का प्रभाव :-

शिक्षा ही इन्सान के व्यक्तित्व को संवारती है व्यक्ति के व्यक्तित्व में सहायक बनकर चलने वाली केवल शिक्षा हैं। शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए तथागत बुध्द ने कहा था 'सारे दुखों का कारण अज्ञानता हैं' मनुष्य अज्ञानता से दूर हो जाय तो पाप-पुण्य, ऊँच - नीच,अच्छे -बुरे की समझ आ सकती है। हिंदी दलित उपन्यासों में शिक्षा का महत्व दलित साहित्यकारों ने अपने उपन्यास के नायक-नायिकाओं के माध्यम से समझाया हैं। वर्तमान समय में भी दलितों को शिक्षा प्राप्त करने हेतु कितनी भयावह स्थिति का सामना करना पड़ता हैं इसका यथार्थ चित्रण यह उपन्यास करते हैं। जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर'उपन्यास शिक्षा के महत्व को दर्शाता हैं। नायक चन्दन उच्च

शिक्षा पाने के लिए शहर जाता हैं तब गाँव के ठाकुर जमींदार,सवर्ण मानसिकता के लोग उसके पिता सुक्खा पर पंचायत के द्वारा बहिष्कृत कर देते हैं। गाँव के सवर्णों को यह भय हैं की दलित पढ़ने -लिखने लगे तो उनके साफ -सफाई और खेत -खलियान के काम कौन करेगा। सुक्खा चमार और उसका का बेटा चन्दन डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर विचारों से प्रेरित थे इसलिए उन्होंने गाँव से बेदखल होना मंजूर था। परन्तु बेटे को पढ़ा-लिखाकर अपनी जाति की उन्नति करवाना चाहता था।

'जस तस भई सवेर' उपन्यास में सरवन शिक्षा से प्रभावित हैं वह समझदार एवं शिक्षित होने के कारण अपने बच्चों को पढाना चाहता हैं। वह अन्धविश्वास और पूजा -पाठ में फिजूल खर्च न करते हुए अपने परिवार को सुखी समाधानी रखना चाहता हैं। अपने भाई -भाभी को भी वह यही सलाह देता हैं परन्तु वह हरसन्ना भगत के अन्धविश्वासी विचारों के चुंगुल में फसकर अपने सगे भाई सरवन से इर्षा करते हैं।भाई हंसा की घर की हालत खराब हो जाती हैं उसको इस अज्ञानता से बहार निकलने की सलाह सरवन देते हुए कहता हैं , "हंसा तुमने पोंगा पंडितों के चक्कर में पड़कर बेकार में पाँच हजार रुपये खर्च कर दिए इस पैसे को तुम अपना टुटा हुआ घर बनाने में लगा सकते थे बच्चों को पढ़ाने के लिए तुम कहते हों की पैसा नहीं हैं।"८ इससे स्पष्ट होता हैं कि इस तरह की अज्ञानता के कारण दलित शिक्षा से वंचित रह रहे हैं। 'मिटटी की सौंगंध'उपन्यास का ठाकुर दलितों का आर्थिक शोषण भी करता हैं। जिसमें बच्चों की पढाई हेतु दलितों द्वारा लिया ऋण अधिक लिखवा लेता हैं। हरिया के पिता अपने बेटे की फीस भरने के लिए ठाकुर से पाँच हजार का कर्जा लेता हैं और उसने उसके नाम पर पच्चीस हजार कर्जा लिखवा लेता हैं, तांकि कोई भी दलित बच्चा शिक्षा से वंचित रहे और ठाकुर की गुलामी करता रहे। इस प्रकार से दलितों को सदियों से शिक्षा से वंचित ही रखा गया हैं।

२) दलितों का आर्थिक जीवन :-

हिंदी दलित उपन्यासों में आर्थिक जीवन का चित्रण बखूबी से हुआ हैं। दलित उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में दलितों में जो आर्थिक आभाव था वह वास्तविक रूप से चित्रित किया हैं। दलितों के जीविका के साधन नाम मात्र थे उन्हें भूमि,स्वास्थ्य तथा आय के अन्य स्रोतों जैसे शिक्षा और व्यापर से भी दूर रखा गया। उनको धन संपत्ति रखने का अधिकार ही नहीं था। इसी कारण उन्हें गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी एंव बेगारी इन समस्याओं का सामना करते हुए दलितों को गंदे एवं कठिन कार्य करने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसी वजह से उनका शोषण एवं उत्पीडन हुआ।

दलितों में निर्धनता :-

मनुष्य के लिए गरीबी अत्याधिक निर्धन होने की स्थिति हैं। जब किसी व्यक्ति के उपर अच्छा छत,आवश्यक भोजन, कपडे,दवाईयां आदि जैसी जीवन को जारी रखने के लिए महत्वपूर्ण वस्तुओं की कमी हो वह निर्धन हैं। हिंदी दलित उपन्यासों में गरीबी का चित्रण बहुत ही अधिक बन पड़ा हैं। जिसका कारण दलितों की मुख्य समस्या गरीबी हैं। 'डंक' उपन्यास में लेखक ने विराट और प्रेमिका संध्या भारत भ्रमण पर निकलते हैं तब उन्होंने भारत में देखी गरीबी का लेखक वर्णन करते हैं,

"मध्यप्रदेश में एक आदिवासी दलित गाँव हैं
जहाँ दो औरतों के बीच मात्र एक साड़ी होती हैं
जब बहु घर से बहार जाती हैं
तब सास घर में नंगी रहती हैं।" ९

इतनी भयावह स्थिति हैं भारत में अपनी बुनियादी जरूरतों को भी हम पूरा नहीं कर पाते हैं।

'सुअरदान' उपन्यास के झम्मन,छक्कन और बक्तक्खन अपनी गरीबी का वर्णन करते हुए, "जब बच्चे भूख से तड़पते थे। हम लोग जानवरों के गोबर से जो दाने निकालते थे उनको धुलाकर एंव सुखाकर पीसते थे फिर उनकी रोटियों को बनाकर खाते थे।"१० इस प्रकार गरीबी

केवल दलित उपन्यासों की कोरी काल्पनिकता नहीं है। दलित साहित्यकारों ने अपने जीवन में यह सब उन्होंने भोगा हैं । आज भी जातिभेद के कारण दलितों को रोजगार नहीं मिलता हैं । 'छप्पर'उपन्यास का सुक्खा संपत्ति के अधिकार से बेदखल होने के बाद उस पर बेरोजगारी की समस्या आ जाती हैं । दलित युवक शिक्षित होकर भी उन्हें रोजगार नहीं मिलता है जिसका चित्रण हिंदी दलित उपन्यासों में दिखाई देता हैं ।

आ) आर्थिक विषमता में दलितों का जीवन :-

आज आधुनिक युग में भी आर्थिक विषमता साफ तौर पर दिखाई देती हैं । अमीर अमीर होता जा रहा हैं और गरीब अधिक गरीब हो रहा हैं । यह आर्थिक विषमता केवल धार्मिक अज्ञानता, जातिभेद,वर्णभेद के कारण दिखाई देती हैं । 'छप्पर' उपन्यास में भी भारतीय गाँवों की तरह मातापुर में भी मुठ्ठी भर लोग सपन्न हैं और शेष लोग दीन और दरिद्रता में जीवन जी रहे हैं । "सुखी -संपन्न लोगों में सवर्ण कहलाने वाले ब्राहमण -पुरोहित ठाकुर -जमींदार तथा लाला -साहूकार हैं। दुसरे गाँवों की तरह सवर्ण लोग ऊपर की ओर तथा अवर्ण कहे जाने वाले दलित लोग गंगा के बहाव की ओर निचान में बसे हैं ।" ११ यह भारतीय गाँवों की रचना दिखाई देती हैं परन्तु इस रचना के मूल में आर्थिक विषमता स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है ।'डंक'उपन्यास का चुगनलाल वाघमारे आर्थिक विषमता के बारे में सोचता हैं कि, "समाज में इतना अंतर क्यों हैं । कोई तो इतना अधिक धनवान है कि वह पैसा हर जगह पानी की तरह बहाता हैं । हर सुख -सुविधा उसको प्राप्त हैं । उसके बच्चे अंग्रेजी स्कूलों से लेकर विदेशी विश्वविद्यालयों और संस्थानों में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं । उनके प्राप्त आलीशान महल हैं । आधुनिक लम्बी -लम्बी लक्जरी गाड़ियाँ हैं शादी -ब्याह में करोड़ों रूपये खर्च करते हैं ।

दूसरी तरफ नंगे भूखे -लोग जिनके पास रहने के लिए घर तक नहीं हैं । घर के नाम पर वह टूटे-फूटे आसियाना है । बच्चों को पढ़ा नहीं सकते हैं । अपने बच्चों की शादी -ब्याह गिलट के जेवरों,एक जोड़ी धोती -कुर्ता और छः बोतल महुए की शराब में ही निपटा लेते हैं । समाज में यह कितनी बड़ी विडम्बना हैं ।"१२ स्पष्ट है कि आर्थिक विषमता की यह खाई ज्यादा से ज्यादा गहरी होती जा रही हैं । 'जस तस भई सवेर' उपन्यास में लेखक ने शिवदास और सुमेधा इन पात्रों के माध्यम से इस निर्धनता और विषमता के इस चक्र को तोड़ने का उपाय सुझाते हैं । उनका मनना हैं कि जब मेहनतकश वर्ग यह समझ जायेगा की निर्धनता मिटाने का सही उपाय क्या हैं अर्थात निर्धन के साथ कथित रूप से समान रोटी -बेटी का व्यवहार करने वाले ....जो निर्धन हैं उसका पेट काटकर धनिक लोग रंगरलियाँ मना रहा हैं । कुत्तो को मख्खन उसकी मेहनत से खिलाया जा रहा हैं । जिस दिन गरीबी की परिभाषा और उसका कारण समझ आ जायगा उसी दिन निर्धनता का चक्र टूट जायेगा ।

इ) आर्थिक मुक्ति के लिए दलितों का संघर्ष :-

वर्णव्यवस्था के नुसार शुद्र जातियों को संपत्ति का आधिकार प्राप्त नहीं था । दलित समूह की कई जातियाँ हैं जिनको यह अधिकार नहीं था कि वह जीवन यापन करने के लिए आर्थ संग्रह करे या सपन्नता का जीवन जिए तथा जमीन -जायदाद रख सके । परन्तु भारतीय संविधान के अनुसार आज अनेक जातियों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्राप्त हुआ हैं । इतना ही नहीं उनको संवैधानिक अधिकार हैं कि वह अच्छे जीवन जिने के लिए जमीन -जायदाद रख सकते हैं । सदियों से हो रहा दलितों का आर्थिक शोषण का ही प्रतिफल हैं जो आज उन्हें अर्थार्जन के लिए कड़ी मेहनत एवं संघर्ष करना पड़ रहा हैं । इसीलिए यह आर्थिक बंधनों की मुक्ति के लिए तथा इस निर्धनता के दुष्चक्र को मिटाने का निश्चित उपाय 'जस तस भई सवेर'उपन्यास का पात्र शिवदास बताता हैं, "निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ने के लिए हमें अपनी बचत के साधन बढ़ाने होंगे फिजूलखर्ची रोकनी होगी। बचत में वृध्दि करके निवेश बढ़ाना होगा । लघु साधनों को बृहत रूप देना होगा । स्मरण रहे रुपया जब जेब में रहता हैं तो बढ़ती मुद्रास्पति के कारण 75 पैसा रह जाता है जबकि निवेश करने से वह 1.50 रूपये बन जाता है। इस बचत को दुगुना किया जा सकता है। यही कारण हैं कि अमीर और अमीर और गरीब और गरीब होता जा रहा हैं ।"१३

'छप्पर'उपन्यास का नायक चन्दन धार्मिक कर्मकांड का विरोध करते हुए संतनगर के दलितों को समझाता हैं की सत्य को परखो यह यज्ञ-अनुष्ठानों पर किया गया खर्च आपके क्या काम आ सकता हैं । यही पैसा अपने जीवन सुधार में लगाये। आपके बच्चे दिन भर रेत -मिटटी में खेलते फिरते हैं उनका भविष्य बनाने की ओर ध्यान दीजिए । महिलाओं को सिलाई -बुनाई का प्रशिक्षण दिलाने की व्यवस्था कीजिए ।

जिससे कुछ अर्थर्जन होगा और आर्थिक समस्या से मुक्ति मिले ऐसे व्यवसाय या काम करने के लिए चन्दन कहता हैं। चन्दन के माध्यम से लेखक ने दलितों के सामाजिक आन्दोलन के द्वारा आर्थिक समस्या से मुक्ति का सन्देश दिया हैं। 'मिटटी की सौगंध' उपन्यास का हरिया और सूरज खेत की मेढं पर बैठे गन्ना चूसते चर्चा करते है कि किस प्रकार ठाकुर ने दलित समाज का कर्ज के नाम पर आर्थिक शोषण किया हैं

'सुअरदान' उपन्यास में उपन्यासकार ने दलित युवको को आर्थिक समस्या से मुक्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं इसका एक समाधान दिया हैं। उनका मानना हैं ग्रामीण भारत जातिवाद और उत्पीडन का केंद्र हैं। जातिवाद से दूषित ग्रामीण क्षेत्र को सामाजिक आर्थिक विकास की सही दिशा मील जाय तो उच्च तकनीक व व्यवसायिक शिक्षा में निपुण सिंहासनखेडा गाँव के युवक ऋण लेकर पिग्री फार्म स्थापित करते है और देखते ही देखते करोडपति बन जाते हैं। पूरा उपन्यास यह सन्देश देता हैं कि आज के युग में कोई काम छोटा बड़ा नहीं होता और कोई व्यापर करना अधर्म नहीं होता हैं। मेहनत और ईमानदारी से हर कार्य कीजिए आप सफल रहोगे। यह स्पष्ट हैं की धर्म को नहीं तो कर्म को महत्व देना चाहिए क्योंकि दलितों की आर्थिक मुक्ति उसी कर्म से निहित हैं।

निष्कर्ष :-

हिंदी के प्रतिनिधि दलित उपन्यासों में दलितों का सामाजिक और आर्थिक जीवन की दृष्टि से अध्ययन करने के उपरांत हम इस निष्कर्षात्मक बिंदुओं तक पहुंचे हैं -

- सामाजिक एवं आर्थिक जीवन से जुड़ी हर समस्याए और स्थितियों से संघर्ष करते पात्रों का चित्रण हुआ हैं।
- स्वतंत्रता मिलने के इतने वर्ष बाद भी भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म की आड़ में दलितों को अपमानित एवं छुआछुत का व्यवहार किया जाता हैं यही दलितों के प्रति सवर्णो की मानसिकता रही हैं।
- वर्णव्यवस्था और ब्राह्मणी मानसिकता के अनुसार उपर्युक्त तिन वर्ण छोड़कर सभी जातियाँ शुद्र कहलाती हैं परन्तु शुद्र जातियाँ भी आपस में ऊँच-नीचता एवं जाति-भेद का व्यवहार करती हैं, यह चित्र भयावह हैं। यह दलितों को समझाना होगा बाबासाहेब डॉ.भीमराव अम्बेडकर हमेशा कहते रहे जब तक हम लोग आपस में ऊँच-नीचता एवं जाति-भेद का भाव रखेगे तो हमारी उन्नति नहीं होगी।
- पूँजिपति सवर्णो ने हमेशा ही नारियों को अपनी ऐयासी का साधन ही समझा हैं सदियों से लेकर आज तक दलित नारियों का शारीरिक एवं मानसिक शोषण किया हैं।
- सदियों से दलितों का शोषण अज्ञानता के कारण होता रहा हैं बाबासाहेब डॉ.भीमराव अम्बेडकर की प्रेरणा से आज दलितों में शिक्षा का प्रभाव बढ़ रहा हैं। फिर भी उनको फीस भरने या नौकरी में उनका सवर्णो दवारा अपमान या आर्थिक शोषण करके शिक्षा से वंचित रखा जाता हैं।
- दलितों का अन्धविश्वास,अज्ञानता,धार्मिक पाखंड के कारण पंडित -पुरोहितों ने आर्थिक शोषण किया हैं। प्राचीन काल से दलितों को बेकारी बेरोजगारी भुखमरी एवं निर्धनता का सामना करना पड़ा हैं यही कारण हैं कि आज भी भारतीय समाज में आर्थिक विषमता की खाई नजर आती हैं।
- वर्तमान काल में संवैधानिक कानून और शिक्षा से दलितों में हुए परिवर्तन की अपनी आर्थिक मुक्ति एवं अस्तित्व के संघर्ष की लढाई लड़ रहे हैं।

संदर्भ सूचि :-

1. जयप्रकाश कर्दम, 'छप्पर', संगीत प्रकाशन,शाहदरा,दिल्ली,प्र.सं.१९९४, पृ.३६
2. मोहनदास नैमिशराय,'मुक्तिपर्व', अनुराग प्रकाशन,दरियागंज नई दिल्ली,प्र.सं.१९९९, पृ.६३-६४
3. अजय नावरिया, 'उधर के लोग',राजकमल प्रकाशन,प्रा.लि.नई दिल्ली,प्र.सं.२००८, पृ.११३
4. मोहनदास नैमिशराय,'मुक्तिपर्व', अनुराग प्रकाशन,दरियागंज नई दिल्ली,प्र.सं.१९९९, पृ.९९
5. प्रेम कपाड़िया, मिटटी की सौंगंध, भारतीय सामाजिक संस्थान नई दिल्ली, प्र.सं.१९९५, पृ.०८

6. रूपनारायण सोनकर, 'सूअरदान', सम्यक प्रकाशन,पश्चिमपुरी,नई दिल्ली,प्र.सं.२०१०,पृ.२५
7. कावेरी, 'मिस रमिया', आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, गाजियाबाद, प्र.सं.२००७,पृ.९६
8. सत्यप्रकाश, 'जस तस भई सवेर', सागर प्रकाशन,शाहदरा,दिल्ली,प्र.सं.१९९८ , पृ.१०
9. रूपनारायण सोनकर, 'डंक', अनिरुध्द बुक्स,आजादपुर,दिल्ली प्र.सं.२००९ ,पृ.०९
10. रूपनारायण सोनकर, 'सूअरदान', सम्यक प्रकाशन,पश्चिमपुरी,नई दिल्ली,प्र.सं.२०१०,पृ.६९
11. जयप्रकाश कर्दम, 'छप्पर', संगीत प्रकाशन,शाहदरा,दिल्ली,प्र.सं.१९९४, पृ.०५
12. रूपनारायण सोनकर, 'डंक', अनिरुध्द बुक्स,आजादपुर,दिल्ली प्र.सं.२००९ ,पृ.१४४
13. सत्यप्रकाश, 'जस तस भई सवेर', सागर प्रकाशन,शाहदरा,दिल्ली,प्र.सं.१९९८ , पृ.४५

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिंदी आंबेडकरवादी कविता और व्यक्ति की गरिमा

डॉ. संजय रणखांबे
प्रोफ़ेसर तथा विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
डॉ. अण्णासाहेब जी. डी. बेंडाळे, महिला महाविद्यालय, जलगाँव

भूमिका

स्वतंत्रता के बाद विशेषत: देश में संविधान लागू होने के बाद देश की सोच में बुनियादी परिवर्तन आया। सभी ज्ञान शाखाओं के साथ-साथ साहित्य के क्षेत्र में भी स्वतंत्रता आंदोलन द्वारा तथा देश के संविधान में प्रतिपादित मूल्यों ने जनता को काफी प्रभावित किया। देश की जनता की गुलामी तथा परंपरागत सोच में भी सकारात्मक परिवर्तन आया। स्वतंत्रता, समता, बंधुता जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों ने देश के जन-सामान्य को झकझोर दिया। परिणामस्वरुप देश में विमर्शमूलक साहित्य का साहित्य प्रारंभ हुआ। यह साहित्य संविधान में प्रतिपादित स्वतंत्रता, समता, बंधुता, न्याय, धर्मनिरपेक्षता, व्यक्ति की गरिमा, आदि लोकतांत्रिक मूल्यों से प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हैं। हिंदी में भी यह प्रभाव दिखाई देता है। अगर हम संविधान लागू होने से पूर्व का साहित्य और संविधान लागू होने के बाद का साहित्य देखें तो यह अंतर स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। हिंदी कविता को लेकर भी यह अंतर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

महात्मा फुले, छत्रपति शाहू महाराज, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर आदि महापुरुषों के आंदोलन, विभिन्न सुधारवादी आंदोलन तथा संविधान ने जो स्वतंत्रता, समानता, बंधुता, न्याय, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता का वातावरण तैयार किया, इसके परिणामस्वरूप समकालीन हिंदी कविता के साथ समान्तर रूप से विमर्शमूलक साहित्य जैसे- स्त्रीवादी कविता, दलित या आंबेडकरवादी कविता, आदिवासी कविता जैसी काव्यधाराओं का सूत्रपात हुआ। धीरे-धीरे, दशक-दर-दशक इन काव्यधाराओं का विकास हुआ। प्रारंभ में मुख्यधारा के साहित्यकारों ने इनकी अलग पहचान को अस्वीकार किया परंतु समाज के हाशिये के लोगों की आवाज को अंतत: स्वीकार करना पड़ा। परंतु आज भी इस साहित्य को वह जगह प्राप्त नहीं हुई है जो मुख्यधारा के साहित्य की है। यह साहित्य प्रमुख रूप से सदियों से उपेक्षित, वंचित समुदाय का है।

प्रमुख आंबेडकरवादी कवि

हिंदी के प्रमुख आंबेडकरवादी कवियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. एन. सिंह, मोहनदास नैमिशराय, रमणिका गुप्ता, डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, सुशीला टाकभौरे, श्यौराजसिह बेचैन, सी. बी. भारती, उमरावसिंह जाटव, डॉ. शरतेन्दु, डॉ. अभयकुमार, सूरजपाल चौहान, ईशकुमार गंगानिया, डॉ. राजेन्द्र बडगुजर, जयप्रकाश लीलवान, सुशीलकुमार शीलू, चिरंजी कटारिया, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. रमाशंकर आर्य, रजनी तिलक, कँवल भारती, रामदास निमेश, हरिमोहन आदि प्रमुख हैं।

व्यक्ति की गरिमा

भारतीय संविधान में व्यक्ति की गरिमा को सर्वोपरि माना है। भारतीय संविधान की उद्देशिका में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उद्देशिका में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत के सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक **न्याय** प्राप्त करने का समान अधिकार है। उन्हें विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की पूरी स्वतंत्रता है। सभी नागरिकों को प्रतिष्ठा और अवसर प्राप्त करने की समता है। परंतु यह प्राप्त करने के लिए इन सब में व्यक्ति की गरिमा को सर्वोपरि माना है। अर्थात् न्याय, स्वतंत्रता, समता इन अधिकारों का प्रयोग करते हुए हर एक नागरिक को हर व्यक्ति की गरिमा का भी ध्यान रखना है। इन अधिकारों का प्रयोग करते समय दूसरे मनुष्य की गरिमा का हनन न हो इसका ध्यान सभी नागरिकों ने रखना है।

इस प्रकार भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों की संरचना की गई है जिसमें हर नागरिक को अपने अधिकार तो प्रदान किए गए हैं लेकिन साथ ही साथ यह भी ध्यान रखा गया है कि दूसरे व्यक्ति की गरिमा को किसी भी प्रकार से क्षति न पहुंचे। इस तरह से भारतीय संविधान व्यक्ति की गरिमा इस मूल्य की स्थापना करता है। "प्रस्तावना में व्यक्ति के गौरव को बनाए रखने के लिए व्यवस्था की गई है। स्वतन्त्रता से पहले अंग्रेजों ने भारतीयों के गौरव को मान्यता प्रदान नहीं की। भारतीयों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता था। आजादी के बाद भारतीयों में गौरव को बनाए रखने के लिए प्रस्तावना में इस बात को अंकित किया गया कि बिना गौरव अनुभव किए कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। इस तरह से संविधान की प्रस्तावना के द्वारा भारत में व्यक्तिगत गौरव को स्थापित रखा जाएगा। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सभी व्यक्तियों को मौलिक अधिकार समान रूप से दिए गए हैं।"[1] भारतीय इतिहास में राजतंत्रात्मक व्यवस्था में जहाँ व्यक्ति के अधिकारों को कुचला गया, उसकी गरिमा को तहस-नहस किया गया, ऐसी स्थिति में भारतीय संविधान स्वतंत्रता के बाद व्यक्ति की गरिमा को सर्वोच्च स्थान देता है।

हिंदी आंबेडकरवादी कविता में व्यक्ति की गरिमा

भारतीय समाज में सदियों तक जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था ने **मनुष्य की गरिमा** को छीन लिया। उसके श्रम का शोषण किया और इसके बदले में उसे केवल अपमान मिला। यही कारण है कि कवि परंपरागत भारतीय संस्कृति के इन मूल्यों को नकारता है और संविधान द्वारा स्थापित समता और न्याय इन मूल्यों को स्वीकारता है। क्योंकि वह जान चुका है कि संविधान में प्रतिपादित मूल्यों से ही उसे परंपरागत अपमानभरी जिंदगी से मुक्ति मिली है और गरिमा प्राप्त हुई है-

"अब वह जान गये है / स्वतंत्रता-समता और बंधुत्व

जैसे मानवीय मूल्यों को जो मनुष्य मात्र को / गरिमा प्रदान करते हैं।"[2]

भारतीय समाज ने जाति एवं वर्ण व्यवस्था द्वारा संचालित अमानवीय परंपराओं में फँस कर **व्यक्ति की गरिमा** को गौण स्थान दिया । उसके स्वतंत्र अस्तित्व को नकारा । जिसके कारण निम्न जाति एवं वर्ग के लोग अपने मानवीय अधिकारों से भी सदियों तक वंचित रहे। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के आंदोलन, संघर्ष और संविधान ने व्यक्ति की गरिमा को फिर से स्थापित किया । इसलिए आज उपेक्षित, वंचित समूह अपने अस्तित्व और पहचान के लिए सम्मान, प्रतिष्ठा और पहचान के लिए संघर्ष कर रहे हैं। संविधान भी उन्हें उनकी गरिमा और प्रतिष्ठा प्रदान करता है। कवि सूरजपाल चौहान व्यक्ति की सदियों से खोई हुई गरिमा के संबंध में लिखते हैं –

"सचमुच, सह रहा हूं / कदम- कदम पर / ओछापन जाति का / क्योंकि- / मेरी धार्मिक / और सामाजिक पहचान खो चुकी है / घोर अंधकार में / आज भी- / लगा हूं खोज में / कि- / मैं कौन हूँ।"[3]

जातिव्यवस्था भारत की वास्तविकता है। जाति के आधार पर जगह-जगह पर दलित समुदाय को अपमानित किया जाता है। जातिगत ऊँच-नीचता के चलते जानबूझकर उन्हें अपमानित किया जाता है। सार्वजनिक जगह पर नाम, उपनाम के आधार पर अगर किसी की जाति पता नहीं चलती तो सीधे जाति पूछ ली जाती है। और जब पता चलता है कि वह किसी दलित जाति समूह का है तो मुँह बिचकाया जाता है-

"वो पूछता है हर बार / हर मौके पर / हमसे हमारी जात

हमारा जवाब सुन / उसका मुँह कसैला हो जाता है,

साथ ही उसकी आँखों में हमारे प्रति नीचता का भाव और अधिक गहराता जाता है"[4]

डॉ. आंबेडकर ने अपने संपूर्ण जीवन काल में अछूत-दलित समाज का जीवन संपूर्ण संसार के सामने रखकर उन्हें न्याय तथा सभी मानवीय अधिकार दिलवाने का प्रयास किया। उनका यह प्रयास शोषित, पीड़ित जन को गरिमा प्रदान करने के

लिए था। जिंदगी भर वे अछूतों, दलितों के उद्धार के लिए संघर्ष करते रहे। गोलमेज परिषद के माध्यम से दुनिया के सामने दलितों की गरीबी, दरिद्रता, अज्ञान, अशिक्षा, शोषण तथा अभावग्रस्त जिंदगी का सच उद्घाटित किया। और उन्हें न्याय दिलाने का प्रयास किया। संविधान का निर्माण करते समय उन्होंने इस बात का पूरी प्रामाणिकता के साथ ध्यान रखा। यही कारण है कि भारत का संविधान मनुष्य की गरिमा को सर्वोपरि मानता है। परंतु अभी भी उसके सभी दुखों का तथा यातनाओं का सफर खत्म नहीं हुआ है। आज भी सवर्ण समाज द्वारा उसका सामाजिक तथा आर्थिक शोषण होता हुआ दिखायी देता है। डॉ. शरतेन्दु दलित जीवन का सच बयान करते हुए लिखते हैं -

"भंगी उठा-उठा कर मैला सबका रोज बहाते । इस पुनित अपराध के लिये कितना पैसा पाते ?

बदले में मुठ्ठी भर गौरव प्यार दे दिया होता। कोई हाथ बढाकर अपना तनिक छू दिया होता।"[5]

जाति व्यवस्था और छुआछूत ने यहाँ के सामान्य मनुष्य की गरिमा को रौंद दिया है। सदियों तक इस दलित समाज को यह नरकवत जिंदगी झेलनी पड़ी है। संविधान लागू होने के बाद संवैधानिक रूप से मनुष्य को सम्मान प्राप्त करने का समान अवसर मिला। परंतु जातिव्यवस्था और ऊँच-नीचता समाज में इस तरह से पैठी हुई है कि आज भी इस समुदाय को सम्मान और गरिमा प्राप्त नहीं हुई। शहरों में अभी भी निचले स्तर के काम करना इस समुदाय की मजबूरी है। और यह सफाई का काम करने से सम्मान नहीं मिलता। बल्कि अपमान ही सहन करना पड़ता है। भारत में जातिव्यवस्था, अस्पृश्यता जैसी कुप्रथाएँ किस तरह से यहाँ के मनुष्य की गरिमा को रौंदती आ रही है, इसी का चित्रण आंबेडकरवादी कवि यथार्थ रूप में करता है-

"क्या है यह शहर / ऊंच-नीच का सड़ता मलबा घिन का गारा

यही बात करती हक्का-बक्का

जो करता नरक की सफाई उसको मिलती फटकार-दुत्कार / घूंसे और लातें"[6]

वर्णव्यवस्था तथा जातिव्यवस्था ने सदियों से शूद्र तथा अछूत समाज को अत्यंत घिनौनी तथा गंदगी से भरी जिंदगी जीने के लिए विवश किया। दलित या शूद्र समाज गरीबी, दरिद्रता में जीवन व्यतीत करता था। अपनी भूख मिटाने के लिए सवर्णों की जूठन का इंतजार करना पड़ता था। गाँव में अगर कोई जानवर मरता तो उसे गाँव से खींचकर, उस मरे जानवर का मांस खाना पडता था। भूख के कारण तथा जातिप्रथा के कारण उन्हें यह जिंदगी जीनी पडती थी। इस व्यवस्था ने दलित व्यक्ति की गरिमा को तार-तार कर दिया था। दलित जीवन के इस घिनौने और विद्रूप जीवन अतीत को रेखांकित कर, कवि वर्तमान आंबेडकर समाज में चेतना जागृत कर, उस उत्पीडित दलित जीवन को परिवर्तन के लिए प्रेरित कर, गरिमा प्रदान करना चाहता है।

सवर्णों द्वारा जाति तथा धर्म और धर्मग्रंथों विशेषकर मनुस्मृति के आधार पर दलितों को गंदगी से भरा जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया। स्वयं साफ-सुथरी तथा विलासिता में जिंदगी व्यतीत करने वाले सवर्ण समाज ने दलितों को अत्यंत बर्बर जिंदगी जीने के लिए मजबूर किया। इस सामाजिक विषमता का यथार्थ चित्रण करते हुए आंबेडकरवादी कवि लिखता है-

"उनके आँगन गड्या, बछिया / मेरे आँगन सूअर, मुर्गियाँ / मेरा सिर उनकी लाठी, / बेगारी करने को गाँव। मेरा गाँव, कैसा गाँव ? / न कहीं ठौर न कहीं ठाँव ।।

ब्याह-बारात का काम कराते / देकर जूठन बहकाते / जब मरता है कोई जानवर / दे देकर गाली उठवाते / दिन रात गुलामी कर-करके / थक गए बिबाई फटे पाँव।

मेरा गाँव, कैसा गाँव ? / न कहीं ठौर, न कहीं ठाँव।"[7]

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के आंदोलन, संघर्ष और विचारों से तथा संवैधानिक मूल्यों से जागृत आंबेडकरवादी कवि दलित समाज को अगर सम्मान और गरिमामय जीवन यापन करना है तो संघर्ष करने और गुलामी की जंजीरें तोड़ने का संदेश देता है-

"उठो, झटक कर फेंक दो ये दासता की बेड़

समता और सम्मान की अगर चाहते हो भोर।"[8]

इस प्रकार दलित समाज का सवर्ण समाज द्वारा जो आर्थिक शोषण होता है और जातिप्रथा के कारण उसे जो अपमान से भरी जिंदगी जीने के लिए मजबूर किया जाता है, इसी का यथार्थ चित्रण आंबेडकरवादी कवि ने किया है।

देश के दलित समुदाय की गरिमा को इस देश की जाति और वर्ण पर आधारित व्यवस्था, परंपरा और नियमों ने रौंद दिया। कौन नहीं चाहता अच्छा पढ़ना, लिखना, खाना, पीना, साफ सफाई, शांति से रहना, मनुष्य को यह सारी सुख-सुविधाएँ एक गरिमा प्रदान करती है। परंतु धर्म और धर्म ग्रंथो के आधार पर तरह-तरह के नियम बनाकर इस देश के दलित समुदाय को सुख-सुविधाओं से वंचित रखा गया, उसकी गरिमा को खत्म किया गया। उसकी अज्ञानता और अशिक्षा के बल पर तथा अर्थ और ज्ञान पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सदियों तक उसे अंधकार की खाई में धकेल दिया गया, इसी सच्चाई को आंबेडकरवादी कवि अभिव्यक्त करता है और दलित समुदाय को भारतीय संविधान द्वारा जो गरिमा पूर्ण जीवन जीने का अधिकार प्राप्त हुआ है, उसका प्रचार प्रसार करता है-

"कौन नहीं चाहता / पढ़ना-लिखना, शांति से रहना कौन चाहता है / सूअरों के बीच रहना / मर-मर के जीना गाली सुनना, दुत्कारा जाना / कोई नहीं, कोई नहीं समाज में रहकर भी / समाज से बहिष्कृत होना अर्थ और ज्ञान पर रोक लगाकर / तरह-तरह के कानून बनाकर सभी तरह से कर दिया / दलितों को महरुम / महरुम ! महरुम !"[9]

वर्णव्यवथा तथा जाति व्यवस्था ने शूद्र तथा दलित को अपनी सेवा के लिए धर्म तथा ईश्वर के नाम पर अपना बंधुआ मजदूर बनाकर रख दिया था। उससे सवर्ण समाज अपनी सेवा तो करवाता था पर उसका स्पर्श भी अपवित्र माना गया था। आज भी दलित समाज साफ सफाई तथा गंदगी दूर करने का काम ही करता हुआ दिखाई देता है। इतनी मेहनत के बावजूद उसे अपनी जीविका निर्वाह के लिए उचित मेहनताना भी नहीं मिलता। उसके श्रमरत जिंदगी तथा उसके श्रम-शोषण का चित्र अंकित करते हुए सूरजपाल चौहान लिखते हैं-

"सारा शहर बुहारा करते / अपना ही घर गन्दा रखते / शिक्षा से रहें कोसों दूर दारु पीते रहते चूर / बोतल महँगी तो क्या है / देसी थैली सस्ती है। यह दलितों की बस्ती है।"[10]

भारतीय संविधान ने व्यक्ति की गरिमा को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इससे पूर्व डॉ. बाबासाहब अंबेडकर का आंदोलन और संघर्ष भी दलित, पीड़ित, शोषित मनुष्य की गरिमा के लिए सम्मान के लिए किया गया आंदोलन था। इसी कारण अंबेडकरवादी कवि अपनी कविता के माध्यम से व्यक्ति की गरिमा, सम्मान को अत्यंत महत्वपूर्ण मानता है। आज अंबेडकरवादी समाज सम्मान के लिए किसी भी तरह के संघर्ष का सामना करने के लिए तैयार है। उसके लिए यह सम्मान और स्वाभिमान की लड़ाई है। किसी भी स्थिति में वह अपने स्वाभिमान और गरिमा के साथ खिलवाड़ नहीं होने देना चाहता। मनुष्य की गरिमा के लिए दलित समूह आज संघर्ष करता नजर आ रहा है।

अपने संवैधानिक अधिकारों का उपयोग करते हुए उपेक्षित, वंचित समुदाय के सभी लोग आज शिक्षा के बल पर, संगठित होकर अपने सम्मान और अस्मिता के लिए मानव मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे हैं। इसी को आंबेडकरवादी कवि डॉ.सत्यप्रेमी जी अपनी 'नव चेतना की दस्तक' कविता में लिखते हैं-

"आज जब शिक्षित होकर / नाई-धोबी और कुम्हार / दर्जी-तेली, जाट-जाटव, अहीर और लुहार खाती-धीमर और महार-चमार / बलाई-बेरवा, पासी-भांभी, कोली-मेहतर और सुनार भील-भिलाले, गोंड-मीणा आदि-आदि और ताम्रकार ये सब मेरे परिवार के लोग संगठित होकर अपनी अस्मिता और सम्मान के लिए मानव मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे हैं"[11]

आंबेडकरवादी कवि तथा समाज अपनी पेट की भूख से ज्यादा अहमियत अपने सम्मान को देता है। इसे हासिल करने के लिए वह किसी भी तरह के संघर्ष के लिए तत्पर है। इस मानसिकता को व्यक्त करते हुए कवि लिखता है-

"मैं भूखा हूँ / मुझे रोटी नहीं मिली। मैं भूखा हूँ सम्मान का / क्योंकि सम्मान के लिए छटपटाता रहा था मैं / सदियों-सदियों"[12]

इस प्रकार धर्मग्रंथों, संस्कृति, परंपराओं द्वारा देश के दलितों को गाँव के बाहर गंदगी से युक्त, बहिष्कृत जीवन जीने के लिए विवश किया गया है। आंबेडकरवादी कवि ने दलितों के सदियों से शोषित पीडित, दुख दर्दभरी तथा अपमानित जिंदगी का यथार्थ चित्र अंकित कर उन्हें गरिमा प्रदान हो इसके लिए परिवर्तन की आवश्यकता व्यक्त की है। कवि का मानना है कि संविधान में प्रतिपादित व्यक्ति की गरिमा दलित वर्ग के संबंध में तभी प्रत्यक्ष रूप से आ सकती है जब समाज का जातिवादी और वर्णवादी रवैया समाप्त होगा। वरन तब तक वह केवल संविधान का एक प्रावधान बनकर रह जायेगा।

संदर्भ :

1. डॉ. नवीन कुमार अग्रवाल, भारत की राजनीतिक व्यवस्था, पृ.183-184
2. डॉ. एन. सिंह, अँधेरों के विरुद्ध, पृ. 23
3. सूरजपाल चौहान, वह दिन जरुर आएगा, पृ.61
4. असंगघोष, अब मैं साँस ले रहा हूँ, पृ. 79
5. डॉ. शरतेंदु, पीड़ा दलित समाज की, पृ. 43
6. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मूक माटी की मुखरता, पृ.47
7. सूरजपाल चौहान, क्यों विश्वास करूँ, पृ.23
8. डॉ. जयप्रकाश कर्दम, बस्तियों से बाहर, पृ.65
9. विक्रम कुमार, अछूत अछूत अछूत, पृ. 39
10. सूरजपाल चौहान, क्यों विश्वास करूँ, पृ.45
11. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, मूक माटी की मुखरता, पृ. 17-18
12. सूरजपाल चौहान, संभल भी न पाओगे, पृ. 34

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ

वसावे मुरलीधर बी (शोधछात्र), प्रो. डॉ. शशिकांत 'सावन' (शोधनिदेशक)

प्रताप स्वशासी महाविद्यालय अमलनेर

क.ब.चौ.उत्तर महाराष्ट्र विद्यापीठ जलगॉव

प्रस्तावना :-

आज इक्कीसवीं शताब्दि में हिंदी साहित्य के अंतर्गत आदिवासी रचनाकारों द्वारा सामाजिक, समाजवादी, संघर्षप्रधान, वैयक्तिक एवं यथार्थवादी उपन्यास साहित्य लिखा गया एवं लिखा जा रहा है | आज के हिंदी उपन्यासों का वैशिष्ट्य यह है कि इसे परंपरागत मूल्यों से नही जाना जा सकता, इसे समझने के लिए वर्तमान आर्थिक दबाव, सामाजिक स्थितियाँ और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में पहचानना होगा | इस सदी के अंतर्गत उपन्यासकारों ने अनेक संकेतों, प्रतिकों एवं मिथकों के माध्यम से मनुष्य के आंतरिक संसार की वास्तविकता को उभारा है | एक और सामाजिक जीवन की विसंगतियों को चित्रित किया है तो दुसरी ओर व्यक्ति के आत्मसंघर्ष को बड़ी गहराई से अंकित किया है | समस्या चाहे वैयक्तिक हो या सामाजिक आज के उपन्यासों में केंद्रबिंदुमात्र आम आदमी ही है | आज का जीवन इतना सरल नही है कि किसी मिश्रित राह को लिया जा सके, न जाने मनुष्य आज कितने स्तरोंपर जी रहा है और हर जगह मनुष्य को समस्याएँ आती ही आती है | इसतरह से हम निम्नलिखित आदिवासी हिंदी उपन्यासों को देख सकते है जिसमें बड़ी मात्राओं में आदिवासी समाज की समस्याओं को उकेरा गया है | 'गायब होता देश', 'लौटते हुए', छैला सन्दु', 'डांग', 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'मरंगगोंडा नीलकंठ हुआ', 'धुणे तपे तीर', 'मैं बोरिशाइल्ला', 'जंगली फुल', 'आकाश छूना है', 'विकल्प' आदि उपन्यास को हम ले सकते है |

भूमंडलीकरण के दौर में आदिवासी समाज जंगल का दावेदार होकर भी उन्हें अपने ही जंगलों से खदेड़ने का प्रयास किया जा रहा है | विकास के नामपर शासन एवं उद्योगपतियों द्वारा भूमी अधिग्रहण करके उनकी जमीनें एवं कोयला खदानों पर जबरदस्ती से अधिकार जमाया जाता रहा है | आज हम इक्कीसवीं सदी में पहुँचकर भी हमारे देश का आदिवासी समाज अपने विकास से कोसो दूर है | इसलिए आज आदिवासियों के सामने विस्थापन की भयंकर समस्या उत्पन्न हो रही है | इसतरह से हम निम्ननुसार आदिवासी हिंदी उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ को बता सकते है |

गरीबी और भूखमरी की समस्या :-

'ग्लोबल गाँव के देवता' रणेंन्द्र का प्रसिध्द उपन्यास है | प्रस्तुत उपन्यास में रणेंन्द्र ने आदिवासी असुर जनजाति का चित्रण किया है | किस तरह से आदिवासी असुर जनजाति अपना जीवन यापन करता है ? बेहाल और गरीबी के कारण यह जनजाति काफ़ी परेशानी एवं समस्याओं से झुजती हुई दिखाई देती है | कथा का नायक अपने घर से ढ़ाई-तीन सौं किलोमीटर दूर बरबे जिला के प्रखंड कोयला बीघा के भवरापाठ में पहाड़ के उपर जंगलों के बीच बने आवासीय विद्यालय में नौकरी के लिए पहुँचता है, तो मध्यमवर्गीय जरूरतों को पुरा करनेवाली सुविधाओं से एकदम ही वंचित रहता है | वीरान उस विद्यालय में उसकी दशा 'कब खूँटा उखाडू और भाग निकलू' ? की हो जाती है | यहाँ का आदिवासी समाज भोजन और रोजगार के लिए जंगलपर ही

निर्भर थे | इस जनजाति के पास जमीन होती ही नही की सालभर खाने के लिए मक्के मिल सके | जिस घर में काम करनेवाले हाथ होते है, वह तो खदान में काम करके अपना पेट पाल लेते हैं, लेकिन जिन घरों में काम करने लायक कोई नहीं होता, उस घर का पेट तो जंगल ही पालता है | इसतरह से इस उपन्यास में आदिवासी समाज गरीबी और भूख से बेहाल दिखाई देता है|

अंधविश्वास :-

अशिक्षा के कारण आदिवासी समुदाय में अत्याधिक अंधविश्वास फैला हुआ है| मिथ्या अंधविश्वास के कारण कभी-कभी इन्हें अपने प्राणों से हाथ धोने पड़ते है | रणेंन्द्र के 'ग्लोबल गाँव के देवता' इस उपन्यास में अंधविश्वास को लेकर एक किस्सा लिखा गया है कि अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के खून में सानकर बिछड़ा टालने से फ़सल बहुत अच्छी होती है, इसलिए इस सीज़न में मुंडाकठवा लोग घुमते रहते है| इसतरह का अंधविश्वास करने से समाज में समस्याएँ निर्माण हो जाती है|

बेरोजगारी की समस्या :-

इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यासों का अध्ययन जब हम करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इस आदिवासी समुदाय को बड़ी मात्रा में रोजगार की समस्या का सामना करना पड़ता है | प्राचीनकाल से जंगलों एवं पहाड़ोंपर रहते आए इस समुदाय को अपनी उपजीविका चलाने रोजगार उपलब्ध नहीं कराए जाते है, न इस समुदाय के भागों में विकास होता है, यह समुदाय आज रोजगार की तलाश में वन-वन भटकता रहता है, वाल्टर भेंगरा तरूण का 'लौटते हुए' इस उपन्यास में यह समस्या को सामने लाने की कोशिश की गई है | इस कृति में झारखंड अंचल की ऐसी महिलाओं के दुख और शोषण की अभिव्यक्ति दी गई है, जिन्हें रोजगार की तलाश में दूरस्थ महानगरों एवं अन्य राज्यों की ओर पलायन करना पड़ता है | ऐसा पलायन तो पुरूष भी करते रहे है लेकिन स्त्रियों की पीड़ा विशेष स्वरूप रखती है |

दुसरा उपन्यास 'मरंगगोंडा नीलकंठ हुआ' इस उपन्यास में भी लेखिका ने बेरोजगारी की समस्या को सामने लाने की कोशिश की गई है | प्रस्तुत उपन्यास में किस तरह से आदिवासी समुदाय को अपने जमीन से निकाल दिया जाता है | ग्रामीण विकास के नामपर पुँजिपति वर्ग एवं सरकारी नीतियों के चलते इस समुदाय को अपने ही जमीन पर बेरोजगार की समस्या की समस्या का सामना करना पड़ता है | इस समुदाय के लोग प्रमुखतः जल, जंगल और ज़मीन से ही अपना जीवन यापन करते है लेकिन इस जंगल, जमीनपर भी पूँजपाते वर्ग विकास के नामपर कंपनियाँ एवं खदानों का काम करने से इस समाज को उदरनिर्वाह का सवाल सामने आता है क्योंकि जंगल के बिना यह लोग जिऐंगे कैसे? इनकी झोपडियाँ, खटियाँ बनाने का सामान यह सब जंगल से ही तो आता है, जब खेत में अनाज नहींआता तो यह लोग जंगली कंद, मूल, फल खाकर अपना पेट पालते है | लेकिन इन जंगलों को नष्ट किया जा रहा है और उससे बेरोजगारी की भी समस्या निर्माण होती है|

शोषण की समस्या :-

इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यासकारों ने आदिवासियों की जिंदगी की सच्चाई का वर्णन करने के साथ ही उनके शोषण की दास्तान को भी सबके सामने लाने का प्रयास किया है | आज भी विकास के

नामपर सरकारों, नेताओं, अधिकारियों, पूँजिपतिवर्ग आदि ने इन आदिवासियों का शोषण ही नहीं किया अपितु उनकी संपत्ति (जल, जंगल और जमीन) को लुँटने का कार्य किया | रणेंन्द्र की कृति 'ग्लोबल गाँव के देवता' इसका मुख्य उदाहरण मानी जा सकती है | प्रस्तुत कृति वैदिक युग से लेकर आज के युग तक की आदिवासी शोषण की कथा कही जा सकती है | प्रस्तुत उपन्यास में प्राचीन काल से लेकर आजतक इस समाज के साथ ले रहे छल, कपट और गुलाम बनाकर शोषण करने वाले पूँजपति वगर् पर करारा प्रहार किया गया है | यह लोग विकास के नामपर, खदाने, कंपनियाँ आदिवासियों के जमीन पर ही बनाते है और फिर कुछ पैसों का लालच देकर इस आदिवासी समाज के लोगों को गुलाम बना लेते है | एक ओर यह लोग जंगल की संपत्ति से सुंदर शहर बसा रहे है और दुसरी ओर जंगल के आदिवासियों को दुसरे दर्जे का मजदूर की जिंदगी देकर उन्हें संतुष्ट कर देते है | इसतरह से इन आदिवासियों का बड़ी मात्राओं में शोषण हो रहा है |

विस्थापन की समस्या :-

आज इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यास का जब हम अध्ययन करते है तो हम पाते है कि विस्थापन यह एक सबसे बड़ी समस्या समाज के सामने दिखाई देती है क्योंकि भूमंडलीकरण इस दौर में इस जल, जंगल और जमीन पर अधिवास करनेवाले और इन जंगलों से ही उदरनिर्वाह करनेवाले आदिवासियों को अपने ही जल, जंगल, जमीनों से विस्थापन किया जा रहा है | उनका लगातार दोहन शोषण और उत्पीड़न किया है | सभ्यता और विकास के नामपर प्रकृति को रौंदा है, साथ ही प्रकृति जीवन जीनेवाले निरीह प्रकृत मानव समुदायों के जीवन के साथ हिंसक, बर्बर, अशिष्ट और अश्लिल छेडछाड की है | उनके आस्था के साथ खिलवाड़ किया है, उनकी परंपराओं को तोडा है | उनके जीवन साधनों और संसाधनों को तहस-नहस किया है और उन्हें शरणार्थी की स्थिति में ला पटका है |

'रणेंन्द्र' ने अपने उपन्यास 'गायब होता देश' में विस्थापन की समस्या को बेखुबी से चित्रित किया है | प्रस्तुत उपन्यास में किसतरह से राजनीतिक प्रशासनिक के मिली भगत से झारखंड में भू माफियों ने आदिवासियों की जमीन पर अपना कब्जा करके उनकों अपने ही जमीनों से बेदखल और प्रताड़ना करके उसका विस्थापन करने समस्या हमें दिखाई देती है | उसीतरह 'लौटते हुए' इस उपन्यास में भी ऐसी महिलाओं का दु:ख एवं शोषण को अभिव्यक्ति दी गई है जिन्हें जगह-जगह पर एक जगह से दुसरी जगह विस्थापन करना पड़ता है | अपनी ही जमीन से विस्थापन आदिवासी समाज के सामने सबसे बड़ी चुनौती है, चाहे वह जबरन हो या रोजगार की तलाश में | इसतरह से हिंदी साहित्य के अंतर्गत विविध आदिवासी उपन्यासकारों द्वारा बड़ी मात्राओं विस्थापन की समस्या को चित्रित करने की कोशिश की गई है | यह समस्या केवल किसी विशिष्ट प्रदेश की न होकर वैश्विक दिखाई देती है |

निष्कर्ष :-

इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यासों का अध्ययन करने के बाद यह सारांश निकलता है कि आज भी भारत देश में आदिवासी समुदाय विविध समस्याओं से घिरा हुआ है | ना सरकार उसकी तरफ विशेष ध्यान देती है, ना ही उस समाज के नेता उसकी ओर ध्यान देते है | विविध योजनाएँ भी उनतक नहीं पहुँच पाती है तथा इस समुदाय में बेरोजगारी, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, यौनशोषण, शोषण, गरीबी, अंधश्रध्दा विस्थापन आदि समस्या इस समुदाय में दिखाई देती है |

संदर्भ ग्रंथ :-

1) **"हिंदी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन",** लेखक-डॉ.अमरप्रसाद जायसवाल, साहित्य निलय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण 1994, पृ.11
2) **"भारतीय साहित्य और आदिवासी विमर्श",** लेखक-डॉ.माधव सोनटक्के, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ.1, 2
3) **"आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य",** लेखक-डॉ.उषा कीर्ति राणावत, अतुल प्रकाशन, कानपूर, प्रथम संस्करण 2012, पृ.102
4) **"आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य",** लेखक-डॉ.उषा कीर्ति राणावत, अतुल प्रकाशन, कानपूर, प्रथम संस्करण 2012, पृ.220
5) **"मरंगगोंडा नीलकंठ हुआ",** लेखक-महुआ माजी, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2012, पृ.11
6) https://samalochan.blogspot.com

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

किन्नर समाज और हिंदी साहित्य लेखन: एक विमर्श

प्रस्तोता – डॉ. आनंद गुलाबराव खरात

कर्म. आ.मा. पाटील कला, वाणिज्य एवं कै. अण्णासाहेब एन. के पाटील सायन्स महाविद्यालय,
पिंपळनेर, तह. साक्री, जिला. धुलिया.

सारांश :

भारत में किन्नर समुदाय का इतिहास प्राचीन काल से चला आ रहा है। भारतीय संस्कृति में किन्नर समाज का स्थान सम्पन्न तथा जटिल रहा है। परंतु सामाजिक वास्तविकताओं में उन्हें अलग-थलग, हाशिए पर रखा गया। साहित्य समाज का दर्पण होता है और किन्नर संघर्ष, पहचान तथा आत्म-स्वीकृति पर आधारित रचनाएँ हिंदी साहित्य के समकालीन भाग में महत्वपूर्ण विमर्श बन चुकी हैं। यह शोध-पत्र हिंदी साहित्य में किन्नर समाज के चित्रण, उसकी विविधता, संघर्षों और सामाजिक मान्यताओं के पुनर्निर्माण का अध्ययन प्रस्तुत करता है। शोध में यह भी चर्चा है कि किस प्रकार साहित्य ने किन्नर समुदाय को मात्र 'विचित्र' या 'हंसमुख' कर दिखाया, बजाय उनके सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक संघर्षों को समझने के। इस अध्ययन में किन्नर समुदाय के आत्म-अभिव्यक्ति के प्रयास, उनके अस्तित्व की मान्यता और साहित्यकों की दृष्टि की विवेचना की गई है।

बीजशब्द : किन्नर समाज, हिंदी साहित्य, लैंगिक पहचान, सामाजिक विमर्श, आत्म-अभिव्यक्ति, मानवाधिकार

प्रस्तुत शोध आलेख हिंदी साहित्य में किन्नर समुदाय के चित्रण और उनकी सामाजिक-साहित्यिक स्थिति का विश्लेषण करता है। सदियों से भारतीय समाज में 'मंगल मुखी' कहे जाने वाले किन्नर, मुख्यधारा के साहित्य में उपेक्षित रहे। लेकिन समकालीन हिंदी साहित्य में 'थर्ड जेंडर' की पहचान, उनके मानवाधिकार, मानसिक द्वंद्व और सामाजिक बहिष्कार को केंद्र में रखकर महत्वपूर्ण लेखन हुआ है। यह आलेख इस बात की पड़ताल करता है कि किस प्रकार साहित्य ने किन्नरों को केवल 'दुआ' देने वाले पात्रों से ऊपर उठाकर उन्हें हाड़-मांस के जीवित मनुष्यों के रूप में प्रतिष्ठित किया है

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण होता है, परंतु लंबे समय तक इस दर्पण ने समाज के एक महत्वपूर्ण हिस्से—किन्नर समाज—को धुंधला ही दिखाया। भारतीय पौराणिक कथाओं (शिखंडी, वृहन्नला) में इनकी उपस्थिति तो रही, लेकिन आधुनिक काल के मध्य तक वे साहित्य के मुख्य कथानक से बाहर रहे।

हिंदी साहित्य में 21वीं सदी के लेखन ने 'अस्मितामूलक विमर्श' को जन्म दिया, जिसमें दलित और स्त्री विमर्श के बाद 'किन्नर विमर्श' ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराई। अब साहित्य केवल उनके नाचने-गाने की बात नहीं करता, बल्कि उनके शिक्षा के अधिकार, प्रेम की तड़प और नागरिकता के संघर्ष की बात करता है।

विषय विवेचन :

भारत में किन्नर शब्द का प्रयोग पारंपरिक रूप से उन लोगों के लिए किया जाता रहा है, जिनकी लैंगिक पहचान या तो सामाजिक रूढ़ियों से भिन्न होती है या जिनका लिंग, जैविक लिंग और सामाजिक लिंग के बीच सामंजस्य स्थापित नहीं होता। किन्नर समुदाय सदियों से समाज के हाशिए पर रहा है और उनकी पहचान, सम्मान, सामाजिक स्थिति पर पिछली कई पीढ़ियों ने काम किया और संघर्ष किया है। हिंदी साहित्य में किन्नर समाज का समावेश न केवल सांस्कृतिक विमर्श का विषय रहा है, बल्कि लैंगिक विविधता, अधिकार और मानवीय गरिमा का प्रतिनिधित्व भी रहा है। साहित्यकारों ने कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक के माध्यम से किन्नरों के अनुभवों को मानवीय रूप दिया है[1]।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक स्थिति

प्राचीन ग्रंथों में किन्नरों को देवत्व से जोड़ा गया, लेकिन मध्यकाल और ब्रिटिश काल के दौरान उनकी स्थिति बदतर होती गई। 'क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' (1871) ने उन्हें अपराधी घोषित कर समाज से पूरी तरह काट दिया। समाज ने उन्हें 'अभिशप्त' मान लिया। हिंदी साहित्य ने इसी सामाजिक रूढ़ि को तोड़ने का बीड़ा उठाया है।

हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श के प्रमुख सोपान

क. कथा साहित्य (उपन्यास और कहानियाँ)

हिंदी उपन्यास विधा ने किन्नर जीवन की परतों को सबसे गहराई से उकेरा है।

'यमदीप' (नीरू सिंह): यह उपन्यास किन्नर जीवन की विभीषिका और उनके आंतरिक एकाकीपन को दर्शाता है।

'पोस्ट बॉक्स नंबर 203, नाला सोपारा' (चित्रा मुद्गल): यह उपन्यास इस विमर्श का मील का पत्थर है। इसमें एक माँ और उसके किन्नर बेटे (बिन्नी) के बीच के भावनात्मक संबंध और समाज की निष्ठुरता को दिखाया गया है।

'गुलाम मंडी' (निर्मला भुराड़िया): यह किन्नरों के शोषण और उनके व्यापारिक पहलू को उजागर करता है।

'किन्नर कथा' (महेंद्र भीष्म): यह उनके जीवन के सामाजिक और आर्थिक संघर्षों का दस्तावेजीकरण है।

ख. आत्मकथाएँ (स्वयं की आवाज)

जब किन्नर समाज ने स्वयं कलम उठाई, तब साहित्य में 'प्रामाणिकता' आई।

'मैं पायल' (पायल): यह आत्मकथा उनके बचपन के संघर्ष, लिंग परिवर्तन के दर्द और समाज की तिरस्कारपूर्ण दृष्टि का जीवंत वर्णन है।

'तीसरी ताली' (प्रदीप सौरभ): हालांकि यह उपन्यास है, लेकिन इसकी शोधपरक शैली इसे आत्मकथात्मक विस्तार देती है।

किन्नर समाज: परिभाषा और सामाजिक संदर्भ

किन्नर समाज उन व्यक्तियों का समुदाय है जिनकी लैंगिक पहचान पारंपरिक पुरुष-महिला द्वैत से अलग होती है। सामाजिक दृष्टिकोण से किन्नर एक ऐसा समुदाय रहा है, जिनके जीवन के अनुभव अनेक अखाड़ों, त्यागों तथा विद्रोहों से अभिभूत रहे हैं[2]। भारतीय समाज में किन्नर समुदाय की उपस्थिति लक्षित थी क्योंकि वे धार्मिक समारोहों, झांकियों तथा पारंपरिक सामाजिक आयोजनों में अपनी विशिष्ट पहचान के कारण पाये जाते थे। परंतु, औपनिवेशिक शासन के बाद से, किन्नरों को समाज ने प्रायः हाशिए पर रख दिया और उनकी सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता सीमित कर दी[3]।

किन्नर समाज में विवाह, परिवार, सामाजिक व्यवस्था और पेशेवर जीवन की रूढ़ियाँ अपेक्षाकृत भिन्न हैं। किन्नर समुदाय के लोग न केवल अपनी लैंगिक पहचान के कारण भेदभाव का सामना करते हैं, बल्कि उन्हें रोज़गार, शिक्षा और सामाजिक मान्यता के क्षेत्र में भी बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत, कुछ क्षेत्रों में किन्नर समुदाय ने अपनी संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित रखते हुए सम्मान और गरिमा के लिए संघर्ष किया है[4]।

- **हिंदी साहित्य में किन्नर समाज का चित्रण**

हिंदी साहित्य में किन्नर समाज का चित्रण परंपरा से मौजूद है। पुराने लोकगीतों, वाणी, धार्मिक ग्रंथों और लोककथाओं में किन्नर चरित्र समय-समय पर दिखाई देता रहा है। परंतु आधुनिक हिंदी साहित्य में यह विषय अधिक गहनता से उभरा है, विशेषकर बीसवीं सदी के उत्तरार्ध से[5]।

कविता में किन्नर: आधुनिक कवियों ने किन्नर समुदाय को संवेदनशीलता, दर्द, विरोध और मानवता की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। किन्नर की व्यथा, अस्वीकृति और समाज के प्रति विद्रोह कविताओं में प्रायः दिखाई देता है। कवि उनके अनुभवों को मानवता के व्यापक संदर्भ में देखते हैं।

कहानी और उपन्यास में किन्नर : हिंदी कहानीकारों एवं उपन्यासकारों ने किन्नर पात्रों को मात्र रंगीन या हास्यात्मक तत्व के रूप में नहीं बल्कि सामाजिक असमानता, लैंगिक पहचान और आत्म-स्वीकृति के संघर्ष के रूप में लिखा है। इस प्रकार के साहित्य में पात्र की आतंरिक भाषा, मनोसामाजिक संघर्ष, बाहरी समाज के साथ उसका संवाद स्पष्ट रूप से दिखाई देता है[6]।

नाटक में किन्नर : नाट्य लेखन में किन्नरों के अस्तित्व और संघर्ष को मंच पर जीवंत कर दर्शकों के समक्ष रखा गया है। यहां किन्नर पात्र की आवाज, उसकी आकांक्षाएँ और सामाजिक यथार्थ अधिक तीव्रता से देखे जा सकते हैं।

- **समकालीन हिंदी साहित्य में विमर्श**

समकालीन हिंदी साहित्य का किन्नर विमर्श पूर्व की तुलना में अधिक व्यापक एवं चिंतनशील रहा है। यह विमर्श मात्र साहित्यिक उपक्रम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और मानवाधिकार के संघर्ष से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। ऐसे लेखन में लैंगिक विविधता, समाज की रूढ़ियाँ और आत्म-लिखन की चुनौतियाँ प्रमुख विषय हैं[7]।

समकालीन लेखकों द्वारा रचित कुछ प्रमुख कृतियाँ किन्नर जीवन की विविधता, उनकी रोज़मर्रा की चुनौतियाँ और जीवन-यात्रा को विस्तार से दर्शाती हैं। इन रचनाओं में किन्नर पात्र केवल सामाजिक अन्यता का प्रतिनिधित्व नहीं करते, बल्कि वे आत्म-सम्मान, अधिकार और पहचान के लिए संघर्ष करने वाले व्यक्ति के रूप में स्थापित होते हैं। इस प्रकार का साहित्य मनुष्य को उसकी जटिलताओं और विविधताओं के साथ वास्तविक रूप में प्रस्तुत करता है।

- **लैंगिक पहचान और साहित्य की भूमिका**

हिंदी साहित्य ने लैंगिक पहचान के सवाल को केवल सामाजिक विमर्श तक सीमित नहीं रखा, बल्कि यह आध्यात्मिक, दार्शनिक और मानवीय संदर्भ में विस्तृत किया है[8]। लैंगिक पहचान का प्रश्न केवल एक सामाजिक समस्यास्थल ही नहीं है, बल्कि यह मानव के आत्म-सातत्व निर्माण की एक जटिल प्रक्रिया भी है। साहित्य की भूमिका यहां पर सोचने, समझने और स्वीकारने के लिए मार्गदर्शक के समान है।

किन्नर समुदाय का साहित्य में स्थान यह दिखाता है कि साहित्य समाज के हाशिए पर खड़े लोगों की आवाज़ को मुख्यधारा में लाने में कितना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। साहित्य केवल सुंदर भाषा का प्रयोग नहीं, बल्कि विविध मानव अनुभवों का अभिव्यक्ति माध्यम है[9]।

किन्नर लेखन के प्रमुख विषय

किन्नर लेखन के प्रमुख विषयों में आत्म-स्वीकृति, सामाजिक अस्वीकृति, प्रेम, दमन, गरिमा की तलाश, संघर्ष, आत्म-आत्मिकता और सामाजिक व्यवस्था के साथ उनकी संबंध गतियाँ शामिल हैं[10]। यह विषय हिंदी साहित्य के बहुआयामी विमर्श के अनुरूप हैं और आधुनिक समाज के विभिन्न प्रश्नों को जन्म देते हैं।

आत्म-स्वीकृति और पहचान : किन्नर पात्रों की आत्म-क्वेस्ट और पहचान की प्रक्रिया हिंदी साहित्य का एक प्रमुख विषय रहा है। यह प्रश्न कि "मैं कौन हूँ?" सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत स्वरूप में प्रस्तुत होता है।

प्रेम और समानता: अनेक रचनाओं में किन्नरों के प्रेम संबंधों और समानता की भावना को भी संवेदनशील तरीके से दर्शाया गया है। यह प्रेम सामाजिक नियमों और बाधाओं से जूझता दिखाई देता है।

दमन और विद्रोह: किन्नरों का सामाजिक दमन उनके साहित्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। इस दमन के विरोध में किन्नर पात्र विद्रोह, आत्म-अभिव्यक्ति और स्वतंत्रता के मार्ग ढूँढते हैं।

- **समाज और साहित्य: पारस्परिक प्रभाव:**

समाज और साहित्य का संबंध द्विअर्थी होता है। समाज की यथार्थता साहित्य में प्रकट होती है और साहित्य समाज को नई सोच, नई संवेदनशीलता और सामाजिक बदलाव की ओर प्रेरित करता है। किन्नर समाज और हिंदी साहित्य के बीच यह सम्बद्धता अत्यधिक गहन और परिवर्तनकारी रही है[11]।

समाज ने अपनी धारणाओं, रूढ़ियों और मान्यताओं को साहित्य के माध्यम से परखा है तथा साहित्य ने समाज में व्याप्त भेदभाव, असमानता और मानवाधिकार के प्रश्नों को उजागर किया है। इसके परिणामस्वरूप

आज हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श न सिर्फ एक सैद्धांतिक विमर्श है, बल्कि व्यावहारिक सामाजिक आंदोलन का भी प्रतीक बन चुका है।

- **निष्कर्षतः**

इस शोध-लेख में हमने हिंदी साहित्य में किन्नर समाज की अभिव्यक्ति, उसके विमर्श और सामाजिक तथा साहित्यिक महत्व का विश्लेषण किया। यह स्पष्ट है कि साहित्य किन्नर समुदाय के पहचान, संघर्ष और आत्म-स्वीकृति की यात्रा को समझने तथा समाज में समता और सम्मान की भावना को बढ़ाने में एक प्रभावी माध्यम है। हिंदी साहित्य ने किन्नर समाज को पारंपरिक रूप से अलग-थलग जीवन यापन करने वाले समूह के रूप में नहीं देखा है, अपितु उनकी मानवीय पीड़ा, संवेदनाएँ और आत्म-प्रकाश की आकांक्षाओं को व्यापक रूप से व्यक्त किया है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श सामाजिक चेतना, मानवीय अधिकार और लैंगिक विविधता के समकालीन प्रश्नों को समाहित करने का एक सशक्त साधन रहा है।

संदर्भ सूची

[1] शर्मा, आर. (2018). लैंगिक पहचान और हिंदी साहित्य. दिल्ली: भारतीय साहित्य प्रकाशन.

[2] वर्मा, पी. (2020). समाज और किन्नर समुदाय की सामाजिक स्थिति. मुंबई: सामाजिक अध्ययन केंद्र.

[3] गुप्ता, एस. (2019). भारतीय संस्कृति में लैंगिक विविधता. वाराणसी: ज्ञान भारती.

[4] सिंग ए. (2021). किन्नर साहित्य: एक परिचय. लखनऊ: साहित्य विमर्श.

[5] जोशी, के. (2017). हिंदी कविता में सामाजिक विमर्श. पटना: कविता सदन.

[6] मेहता, एल. (2022). हिंदी कथा में विविधता. जयपुर: कथा प्रकाशन.

[7] दास, एन. (2023). समकालीन साहित्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण. कोलकाता: विमर्श पब्लिकेशन.

[8] यादव, आर. (2020). लैंगिक विमर्श और साहित्य. भोपाल: विचार मंथन.

[9] पाठक, एम. (2019). साहित्य का समाज से सम्बन्ध. आगरा: ज्ञानदीप.

[10] कुमार, डी. (2021). किन्नर लेखन: विश्लेषण एवं प्रतिमान. दिल्ली: साहित्य भारती.

[11] राव, टी. (2024). समाज और साहित्य: एक अंतर्संबंध. हैदराबाद: सामाजिक विमर्श.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संवैधानिक अधिकारों एवं अस्मिता के लिए जीवन संघर्ष करते स्त्री चरित्र

(हिंदी की लघुकथाओं के सन्दर्भ में)

प्रो.डॉ.कल्पना राजेंद्र पाटील

प्रताप महाविद्यालय(स्वशासी), अमलनेर

जिला जलगांव महाराष्ट्र

प्राचीन भारत में महिलाओं को सभी क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त थे वह भी पुरुषों के साथ मिलकर कार्य कर सकती थी | पतंजलि और कात्यायन जैसे प्राचीन भारतीय व्याकरणकारों का कहना है कि वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा दी जाती थी | उन्हें ऋचाएं पढ़ने का अधिकार था | इतना ही नहीं विवाह के लिए पति चुनाव की भी आजादी थी | ऋग्वेद,उपनिषद जैसे ग्रंथ कई महिला संतों के बारे में बताते हैं, जिनमें गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा,अपाला के नाम उल्लेखनीय है । वैदिक काल में महिलाओं को बराबरी का दर्जा और अधिकार मिलता था किंतु बाद में लगभग 500 ईसा पूर्व महिलाओं की स्थिति में धीरे-धीरे गिरावट आने लगी इसका कारण तत्कालिन राजनीतिक वातावरण था ।

मानव सभ्यता ने समय के साथ उत्तरोत्तर प्रगति तो कि, किंतु महिलाओं की स्थिति में उतना सुधार नहीं हो पाया इसीलिए 26 जनवरी 1950 का दिन भारतीय इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया । इसी दिन देश सदियों की दासता व उतार-चढ़ाव के पश्चात नए गणराज्य के रूप में उभर कर सामने आया भारतीय संविधान द्वारा महिलाओं को बहुत से संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए हैं । भारतीय संविधान में महिलाओं के अधिकारों की ओर ध्यान दिया गया है | उसमें महिलाओं की अस्मिता को ध्यान में रखते हुए अनेक प्रावधान किए गए हैं, जिसके कारण महिलाएं काफी क्षेत्रों में अपनी पताका लहराती हुई दिखाई देती है,किंतु जब सामान्य स्त्रियों की बात की जाए तो, आज भी महिलाओं को वह सामान्य से सामान्य स्वतंत्रता भी नहीं मिल पाती है, जिस पर उनका हक्क है | इन्हीं स्थितियों का अंकन हमें हिंदी साहित्य में दिखाई देता है ।

हिंदी साहित्य में लेखकों ने स्त्री के किसी एक रूप का चित्रण न करके उसके विविध रूपों को चित्रित किया है | समय के अनुसार नारी अपनी भूमिका निभाती रहती है और इसीलिए हमें समाज में उसके अनेक रूपों के दर्शन देखने को मिलते हैं । कभी वह बेटी के रूप में, तो कभी मां के रूप में, कभी भाभी के रूप में, तो कभी ननंद के रूप में, कभी पत्नी के रूप में, तो कभी सास के रूप में । ऐसे विविध रूपों के दर्शन गद्य की विधाओं में देखने को मिलते है । स्त्री के सिवाय समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती | स्त्री और पुरुष रथ के दो पहिए है जब दोनों समान रूप से सहयोग देते है | तभी परिवार की इकाई सुचारू रूप से कार्य करती है | पहले की तुलना में आज स्त्री का कार्य क्षेत्र बढ़ गया है | वह समाज में रहकर विविध भूमिका निभाती है उसे हमेशा स्वयं को सिद्ध करना होता है इसलिए वह जी तोड़कर,अपना कर्तव्य समझकर प्रत्येक कार्य को परिपूर्ण करने का प्रयास करती है | जब परिवार में बेटा या बेटी रास्ते से भटक जाए, या कुछ समस्या आ जाए, तब भी पहले माता यानी स्त्री को ही दोषी पाया जाता है | जिसे नजरअंदर नहीं किया जा सकता |

हिंदी की अन्य विधाओं में जिस तरह से अपनी अस्मिता को पाने के लिए स्त्री के विविध रूपों के दर्शन होते हैं उसी प्रकार लघुकथाओं में भी विविध रूप देखने को मिलते हैं | जिसे लघुकथाकारों ने अपनी लघुकथाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है

विद्रोही और जागरूक स्त्री :-

सीमा सिंह की लघुकथा 'समझदार' में मंजरी स्त्री पात्र के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि लड़की को बचपन से ही समझदार बना दिया जाता है | इतना समझदार बना दिया जाता है कि उसे हर चीज में समझौता करना पड़ता है और जब वह बड़ी हो जाती है तो पति के घर में भी उसे समझौते करने के लिए कहा जाता है | लघुकथा में एक वाक्य जो बार-बार आया है 'तुम समझदार' हो अंत में जब उसका पति उसे लिंग परीक्षण करने के लिए कहता है तो उस समय मंजरी की आंखें खुलती है और वह कहती है "नहीं चाहिए मुझे ये समझदारी का तमगा, मुझे अजन्मे की हत्या में भागीदार बनाता हो।" 1 पेज नंबर 134 लघुकथा के विविध आयाम

आत्मनिर्भर और आधुनिक स्त्री :-

सीमा वर्मा की लघुकथा 'शहर अच्छे हैं' इस ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि लवीना जैसे लोग इस समाज में हो तो गांव क्या शहर भी अच्छे ही लगते हैं |लवीना कॉलेज से लौटते हुए रास्ते में एक बुजुर्ग व्यक्ति को त्रस्त देखकर उनसे बातचीत करती है, उनकी समस्या को समझती है और उन्हें क्या चाहिए यह जानकर वह उनके साथ मानवीय व्यवहार करती है, तब बुजुर्ग, लवीना द्वारा किए गए व्यवहार को देखकर धीरे से कहते हैं , "मैंने सुना था ! शहर के लोग और उनके रहन-सहन बहुत अलग होते हैं बिटिया, पर आज तुम्हें देख कर जान पाया," गांव हो या शहर 'इंसान' हर जगह बसते हैं।"2 पृष्ठ 133

आज स्त्री अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो चुकी है और इसीलिए उसे एक स्पेस की आवश्यकता है जिसे सारिका भूषण ने 'एक स्पेस' लघुकथा के कथ्य के द्वारा बताने का प्रयास किया है | जीवन के कुछ प्रसंग ऐसे होते हैं, जिन्हें प्रेम का नाम नहीं दिया जा सकता ।स्पेस" से तात्पर्य यहाँ शारीरिक दूरी नहीं, बल्कि मानसिक, भावनात्मक और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से होता है । जब कहा जाता है कि स्त्री को भी स्पेस चाहिए, तो उसका अर्थ है: अपने विचार रखने की आज़ादी, निर्णय लेने की स्वतंत्रता ,व्यक्तिगत समय (Me Time)हर इंसान को कभी-कभी स्वयं के साथ समय चाहिए—सोचने, सुकून पाने या स्व को समझने के लिए।भरोसा स्पेस का आधार है। यह एक मनोवैज्ञानिक लघुकथा है जो मानव मन की आंतरिक अनुभूति को विश्लेषित करती है | मिस्टर वर्मा के मुख से 'हेलो मैसेज फ्रेश' यह तीन शब्द सुनने के बाद जो अनुभूति एक स्त्री को होती है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता | हर एक को एक स्पेस चाहिए यह आज के समय की आवश्यक बनती जा रही है जिसे लघुकथाओं में व्यक्त किया जा रहा है |

'तड़प' मंजूषा श्रीवास्तव द्वारा लिखित लघुकथा है जिसमें सुभद्रा और पति पवन के वार्तालाप से यह बात स्पष्ट होती है कि पति चाहे पत्नी से कितना ही प्यार करता हो लेकिन पत्नी के मरते ही कुछ दिनों के बाद दूसरा विवाह कर लेता है, लेकिन स्त्री ऐसा नहीं करती है और इसीलिए इस लघुकथा की स्त्री सुभद्रा अपने पति से कहती है कि मैं जानती हूं कि तुम मुझसे बहुत प्यार करते हो लेकिन जो पति होते हैं वह पत्नियों के गुजरते ही दूसरा विवाह जरूर करते हैं, तो तुम ऐसा नहीं करना ; बल्कि जैसे एक औरत अपने पति के गुजरने के बाद पूरी जिंदगी भर विधवा बनी रहती है, उसकी उसी तड़प को तुम्हें भी समझना होगा और तुम्हें भी विवाह नहीं करना होगा | इस बात को सुनकर पवन स्तब्ध रह जाता है |चाहे यह सच्चाई कड़वी हो, लेकिन उसमें वास्तव छिपा हुआ है|

'केंचुली' लघुकथा का कथ्य मनुष्य की नवीन सोच की ओर, उसके बदलाव की ओर संकेत करता है । स्त्री की जब बात की जाए तो वह किसी भी बदलाव को इतनी जल्दी स्वीकार नहीं कर सकती और घर वाले भी उसके बदलाव को आश्चर्य की नजर से

देख सकते हैं। किन्तु लेखिका इस लघुकथा के माध्यम से बताना चाहती है कि आज के दौर में स्त्री ने बदलते समय के अनुसार कुछ बदलाव अवश्य स्वीकार करने चाहिए | तभी उसे समाज में उचित स्थान प्राप्त हो सकता है |

'पत्नी की इच्छा' लघुकथा दो स्त्रियों की अलग-अलग इच्छा को प्रस्तुत करती है | एक स्त्री वह है, जो राधे की पत्नी और अरुण की मां जिसकी इच्छा थी, अपने परिवार को बांधकार रखने की, तो दूसरी स्त्री वह है, जो राधे की बहू और अरुण की पत्नी है , जिसकी इच्छा है ,संयुक्त परिवार को विभक्त करने की | यह बदलाव स्त्री की मानसिकता पर निर्भर करता है |

परम्परागत एवं त्यागमयी स्त्री :-

परिवार में बड़े बुजुर्गों का होना आवश्यक है क्योंकि उनके संस्कार बच्चों में दिखाई देते हैं | जिससे बच्चों का व्यवहार,उनके सोचने का ढंग ही बदल जाता है यह परिवर्तन शशि पाधा की लघुकथा 'मंजिले लांघता दर्द' में ध्रुव इस पोते के माध्यम से दिखाई देता है। बूढ़ों के दुख दर्द को परिवार के वह छोटे बच्चे भी महसूस करते हैं और इसीलिए ध्रुव अपने दादी के घुटनों के दर्द को देखकर कहता है -"दादीमां! देखिए न,अब मैंने केवल एक ही मंजिल का घर बनाया है। लिफ्ट खराब होने पर आप को सीढ़ियां चढ़ने में दर्द होता है न; इसलिए यह बड़ा -सा घर बनाया है। सब यहीं रहेंगे। सभीईईईईई----।" 3 पृष्ठ 123

'हम बेटियां हैं ना' इस लघुकथा के माध्यम से बेटा और बेटियों में होने वाले अंतर को दर्शाया गया है अपने छोटे भाई के अनेक फोटो एल्बम में देखने के बाद छोटी बहन से रहा नहीं गया और उसने जो कहा वह अत्यंत महत्वपूर्ण है "पर दीदी ,भैया के इतने सारे फोटो एल्बम में है, हमारे तो बस दो-चार ही है ऐसा क्यों ?"बड़ी बहन ने कहा "हम बेटियां है न !" 4

शशि पाधा की 'घर' लघुकथा व्यक्ति के महत्व को विषद करती है। घर तभी बनता है, जब एक स्त्री दूसरे स्त्री का सम्मान करें। केवल स्त्री का ही नहीं तो उसकी हर उस वस्तु का जिससे वह स्नेह करती है। जैसे लघुकथा की बहू लता अपने माता-पिता की तस्वीर के साथ स्नेह करती है, किंतु वह उस तस्वीर को पैकेट से निकालना भूल जाती है तब उसकी सास मीरा उससे पूछती है और कहती है ,"अरे खोलना तो, देखें तो कैसी तस्वीर है।" 5 पृष्ठ. 123 और उनकी तस्वीर को भी अपनी तस्वीर के साथ बैठक की कोने वाली मेज पर करीने से रख देती है।

'मजबूरी' लघुकथा इस तथ्य को प्रस्तुत करती है कि मनुष्य की मजबूरी उसे कैसे-कैसे कार्य करवाती है | मां को इसलिए नौकरी करनी पड़ेगी क्यों कि पारिवारिक स्थिति अच्छी नहीं है और बच्चे को मां का प्यार इसलिए नहीं मिल पाएगा क्योंकि माँ को नौकरी करना जरूरी है ; तभी पारिवारिक स्थिति अच्छी हो सकती है |

पवित्र अग्रवाल की 'नाटक' लघुकथा आज भी समाज में बेटियों की क्या स्थिति है, लोगों की मानसिकता और सामाजिकता को यह दर्शाती है

'उपदेश' लघुकथा के सेवक जी दूसरों को उपदेश देते हैं कि उनकी स्त्रियां मंगल कार्यों में हाथ बंटाने के लिए समाज में कार्य करें किंतु जब उनकी पत्नी बाहर जाना चाहती है तब वह अपने लड़के को कहते हैं तू अभी नादान है बात समझता नहीं है अरे, जब यह कहा जाए कि स्त्री बाहर निकले, तब यह अर्थ होता है कि दूसरों की स्त्रियां निकले, अपनी नहीं।" 5 128 सदाचार का तावीज

'काहे का मरद' पवित्रा अग्रवाल की लघुकथा में कुछ पति ऐसे होते हैं की वह हमेशा अपनी पत्नी पर अन्याय करते हैं | पति स्वयं तो कमाता नहीं है' लेकिन पत्नी किस घर में काम करें और किस घर में ना करें इसकी स्वतंत्रता भी उसे नहीं देता |

प्रेम और संवेदना की प्रतिमूर्ति :-

सतीशराज पुष्करणा की लघुकथा ड्राइंग रूम अत्यंत नवीन कथ्य एवं शैली तथा शिल्प को लेकर लिखी गई है जिसमें परिवार में बच्चों का क्या स्थान है बच्चे ना हो तो माता-पिता किस तरह से अपना समतोल खो देते हैं इसका भी चित्रण किया गया है , इस लघुकथा के माध्यम से एक बात उभर कर आती है कि परिवार में मां के लिए बच्चों का होना अत्यंत आवश्यक है | तभी घर का महत्त्व होता है |

बच्चे निरागस होते हैं बच्चे प्रभु की देन होते हैं उनके समक्ष कोई भी व्यक्ति टिक नहीं पता है और अपनी गलती का एहसास भी मनुष्य को हो जाता है जैसे कि 'सबक' इस लघुकथा में बच्चों के कारण पड़ोस की दोनों पड़ोस के दोनों परिवार आपस में झगड़ लेते हैं किंतु बच्चे बोलना बंद नहीं करते हैं और जब पड़ोस के दूसरे बच्चे का जन्मदिन होता है तो वह बहुत अच्छा उत्तर पड़ोस वाली आंटी को देता है उन्हें भी अपने किए पर पछतावा होता है और वह बच्चे के मात्र एक वाक्य से पसीज जाती है "आइयेगा न, आण्टी ? बोलिए !" 6 पृष्ठ 39 इस लघुकथा के माध्यम से एक बात सामने आती है कि स्त्री हमेशा प्यार के सामने स्वयं को न्योछावर कर देती है |

समाज में नारी का वह रूप भी देखने को मिलता है जब वह अपने प्रेम को महत्व देती है चाहे वह मां ना भी बन पाए तब भी वह सब कुछ स्वीकार करती है क्योंकि उसका कहना है-" यह सब गलत है बकवास है । नारी समर्पण का दूसरा नाम है,पर्यायवाची है नारी नाम है त्याग का, जिसका गलत लाभ पुरुष जाति आज तक उठती रही और सदैव उठाती ही रहेगी फिर तुम..।"7 यह कथ्य है 'इन्सान' लघुकथा का |

स्त्री अगर उससे कोई गलती हो जाती है तो, पति से डरती है; किंतु वही पति अगर मेहमानों के सामने अच्छा बर्ताव करें तो उसका परिणाम पत्नी की प्रसन्न आंखों में देखने को मिलता है 'अपनों के हित के लिए' यह लघुकथा इसी कथ्य को हमारे सामने प्रस्तुत करती है ।

निष्कर्ष :-

अंत में कहा जा सकता है कि संवैधानिक अधिकारों के कारण स्त्री अपनी अस्मिता के लिए जागरूक दिखाई देती है यह जागरूकता चाहे समाज की अन्य स्त्रियों में दिखाई ना देती हो ,किंतु इस ओर प्रयास निश्चित रूप से देखने को मिलता है | लघुकथाकारों ने भी नव नवीन विषयों को लेकर स्त्रियों की अस्मिता को प्रस्तुत किया है और अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए यह स्त्रियां संघर्षशील भी दिखाई देती है फिर यह संघर्ष स्त्री का आर्थिक प्रश्न को लेकर हो या सामाजिक प्रश्न को लेकर हो या पारिवारिक प्रश्नों को लेकर हो या व्यक्तिगत, किंतु उनके इस संघर्ष में आशावाद दिखाई देता है |

दूसरी एक बात यह भी दिखाई देती है कि संवैधानिक अधिकारों के कारण स्त्रियाँ अधिक स्वाभिमानी, निडर ,मानवीय मूल्य की रक्षा करती और अपने अधिकारों के प्रति भी सजग दिखाई देती है,जो आज की 21वीं सदी की स्त्रियों की दशा में निश्चित रूप से सुधार का परिचायक है |

स्त्री अलग-अलग रूपों में अपनी भूमिका निभाती हुई दिखाई देती है | जब वह एक बेटी है तब उसका रूप अलग होता है जैसा हमें सीमा सिंह की लघुकथा 'समझदार' में दिखाई देता है उसके उपरांत जब स्त्री बड़ी होती है उसका विवाह होता है उसका रूप अलग हो जाता है उस पर पति का अधिकार होता है | आज की 21 वी सदी में जो लघुकथाएं लिखी जा रही है उनके विषय अगर देखे तो वह काफी परिवर्तित हैं | उसमें अभिव्यक्त स्त्री संघर्षशील है और संघर्षशील के साथ-साथ वह समाज को

एक दिशा भी देने का कार्य कर रही है |वह समाज में नौकरी कर रही है, इसलिए वह समाज को समझने में कई हद तक अपनी भूमिका निभा रही है |

आज की लघुकथाओं में नये शिल्प नये कथ्य का प्रयोग हुआ है | लघुकथाओं के विषय आज की परिस्थितियों के अनुरूप ही दिखाई देते हैं इससे यह बात पता चलती है कि लघुकथाकार जिन विषयों पर लघुकथा लिख रहे हैं वह आज के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो स्त्री की अस्मिता को उजागर करते है | इस प्रकार लघुकथा विधा निरंतर प्रगति के पथ पर पद चिन्ह अंकित करने में सफल रही है |

सन्दर्भ सूची :-

1. रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' : लघुकथा के विविध आयाम कथ्य एवं शिल्प ,पृ. 134
2. रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' : लघुकथा के विविध आयाम कथ्य एवं शिल्प ,पृ.133
3. रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' : लघुकथा के विविध आयाम कथ्य एवं शिल्प , पृ.123
4. संतोष सुपेकर : भ्रम के बाजार में ,पृ. 130
5. हरिशंकर परसाई : सदाचार का तावीज,पृ.128
6. सतीशराज पुष्करणा : प्रसंगवश पृ. 39
7. सतीशराज पुष्करणा : प्रसंगवश पृ. 44

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

हिन्दी कविता में चित्रित आदिवासी जीवन विमर्श

प्रा. सुनिलकुमार विठ्ठल पाटील
आर्ट्स,कॉमर्स एवं सायन्स कॉलेज,धरणगाव, जि.जलगांव

प्रास्ताविक:

देश के घने जंगलोमें रहनेवाला आदिवासी समाज आज भी शोषित, उपेक्षित एवं आधुनिक प्रगती से दूर है । आजादी के इतने साल बाद भी आदिवासी समाज विकास की धारा से जुड नही पाया है। आज भी वे मूलभूत सुविधाओ से दूर है,अधिकारो से वंचित है और गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवनयापन कर रहा है । आदिवासी शब्द प्रयोग एक ऐसे भौगोलिक क्षेत्र के ऊन निवासीयों के लिए किया जाता है जिनका संबंध उस भौगोलिक क्षेत्र के ज्ञान इतिहास मे सबसे पुराना रहा है । आज के युग मे इन आदिवासी समुदाय पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता आज भी है । कई वर्षो तक आदिवासी समाज अक्षरो से वंचित रहा है । तब वह अपनी अभिव्यक्ती लोकगीतो, लोककथा के माध्यम से व्यक्त करता रहा है । इतिहास गवाह है की आदिवासीओ ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । अंग्रेजो के विरुद्ध पहली लढाई आदिवासीओ ने ही लडी । आदिवासी स्त्रीने भी इस संघर्ष मे अपना अमूल्य योगदान दिया है । आदिवासी प्रकृतिपूजक होने के कारण वे जंगल को अपने जीवन का आधार मानते है । औद्योगीकरण एवं विकास योजनाओं के कारण जंगलो के कटने से उनके अस्तित्व पर संकट के बादल मंडला रहे है । जंगल के काटे जाने से आदिवासी के जीवन मे रोजी रोटी से जुडी रोज की अनेक समस्या से निर्माण हुई है ।

आज समय के साथ साहित्य मे भी बदलाव दिखाई दे रहा है इसलिये साहित्य मे कल्पना, प्रतीक बिंब की जगह पिछडे हुए आदिवासी समाज के अस्तित्व को लेकर चर्चा हो रही है । यह चर्चा उस समाज पर हो रही है जो सदियों से समाज के मुख्य प्रवास से बाहर रहकर दरिद्रता मे अपना जीवन बिताने के लिए मजबूर है । हिंदी कविता के इतिहास में कई वर्ष तक आदिवासी जनजाती के जीवन संस्कृती और कला को लेकर कविताएं नही लिखी गई । आज के आदिवासी कवियो मे निर्मला पुतुल,भुजंग मेश्राम,रमनिका गुप्ता हरिराम मीणा ,वाहरू सोनवणे, वीरसिंग पाडवी,मलखान सिंह आदी कवियों ने अपनी कविता मे आदिवासी समाज के जीवन की विविध आयामो को परखने की कोशिश की है ।

आज आदिवासी और गैर आदिवासी कवियोद्वारा आदिवासी जीवन पर कविताये लिखी जा रही है । मूल आदिवासी कवियोद्वारा अपनी आंचलिक बोलियो मे कविताएं लिखी जा रही है जो आदिवासीयों के जीवन के प्रतिशोध के लिए महत्वपूर्ण मानी जा सकती है । भाषा के स्तर पर भी उनकी अपनी अलग पहचान है जो दुसरो से उन्हें अलग करवाती है । आज की कविताओं में आदिवासी समाज के सत्य, जीवन और कला पर लेखन हो रहा है । आज वर्तमान शताब्दी मे भी आदिवासी अपनी मौलिक और आदिम परंपरा, संस्कृती, जीवनशैली सामाजिक एवं आर्थिक प्रणाली को बचाने मे सक्षम रहता आया है ।

हिन्दी कविता में आदिवासी विमर्श :

सच कहा जाये तो आदिवासी समाज पर विमर्श करना हवा मे निशाना लगाने जैसा है क्यों कि गैर आदिवासीं के लिए मात्र पुस्तके ज्ञान की अलावा अधिक जानकारी नही होती है । एक आदिवासी ही अपनी

भोगी हुई यथार्थ को जितना अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है उतना दुसरा नही कर सकता । यह छोटीसी जानकारी कविताओ के माध्यम से आदिवासी कवियों ने अभिव्यक्त की है ।

भुजंग मेश्राम की 'ओ मेरे बिरसा' :

भुजंग मेश्राम की 'ओ मेरे बिरसा' कविता मे उलगुलान के माध्यम से बिरसा मुंडा का विद्रोह सामने आया है हे संपूर्ण कविता पर बिरसा मुंडा की क्रांती और विचारून का प्रभाव दिखाई देता है इतिहास गवाह है की बिरसा मुंडा ने मरते दम तक गोरे अंगरोजो के विरोध में संघर्ष किया था इसके परिणाम स्वरूप उन्हें कम उम्र मे अंग्रेजो के बंदुकी गोली का शिकार होना पडा था भारत की आजादी की लढाई मे कही ना कही बिरसा मुंडा की क्रांति की ज्वाला को भी परखना होगा ।

"कई कई बार पेश किए गए तुम

पर गणतंत्र नाम की

कोई चिडियाँ

कभी आकर बैठी

तुम्हारे घर की मुंडेर पर?

इस कविता मे अंग्रेजो के विरोध में बिरसा मुंडा का विद्रोह दिखाई देता है । बिरसा मुंडा क्रांतिकारी आंदोलन,सत्ता सामंत ऐतिहासिक षडयंत्र,सत्ता व्यवस्था और भक्षक,आदिवासी राजा आदी पर यह कविता प्रकाश डालती है । आदिवासी मूलतः जंगल के दावेदार माने जाते है लेकिन आज ये लोक न जंगल की जंगल के है और न शहर के दावेदार । विकास के नाम पर जंगलो का ऱ्हास किया जा रहा है । आदिवासीयों को अपनी जमीन से खदेड दिया जा रहा है । इसके कारण विस्थापन की समस्या निर्माण हो रही है । साथ ही मनुष्य पर भविष्य मे होने वाले संकटों की और भी संकेत किया जा रहा है ।

हरिराम मीणा की 'आदिवासी और यह दौर' :

आज ग्लोबल विकास के पॅकेज के नाम पर आदिवासीयों का शोषण हो रहा है । जंगलो का ऱ्हास करके सडको, कंपनीओं, कारखानों का निर्माण किया जा रहा है । आदिवासीयोंकी जमिनें छीनि जा रही है । इसके बारे मे हरिराम मीणा कहते है -

"इसलिए फिर कहती हूं । न छेडो प्रकृति को

अन्यथा यह प्रकृति । एक दिन

मांगेगी । हमसे

तुमसे । अपनी तरुणाई का

एक-एक क्षण । और करेगी

भयंकर..... बगावत । और बग

न तुम होंगे । न हम होंगे ।"

हरिराम मीणा की 'आदिवासी और यह दौर 'नामक कविता आदिवासीओंके जीवन के भविष्य की और ध्यान आकर्षित करती है । आज ग्लोबल विकास के पॅकेज के नाम पर आदिवासीओंका शोषण हो रहा है। हरिराम मीणा की कविता विशेष रूप से विकास घुसपेठ,आदिम चेतना,आतंक सब गुड्डमड्ड यात्रा का वर्णन करती है । इसलिये उन्होने भ्रष्ट शासन एवं शोषकोंके नेपथ्य को सुरक्षित शैतानो का समूह कहा है । यह ऐसा विकास की नौटंकी है जिस मे आदिवाओंके विकास को लेकर स्वयं का स्वार्थ सिद्ध किया है । आदिवासी आज बेघर हो गये है, इनके लिए जंगल भी अछूते है । चारो तरफ से आदिवासीयों का विकास घुसफैट आदिम चेतना का आतंक दिखाई दे रहा है ।

वाहरू सोनवणे की 'मेधा और आदिवासी' :

आज आदिवासी जंगल की बाहर जीवन जीने मे विवश है । उनके पारंपारिक जंगलो के साधन भी समाप्त हो गये है । पहले जैसा जंगल आज नही रहा है । जंगल को बचाने के लिए वाहरू सोनवणे ने इस कविता के माध्यम से आदिवासीओंके संघर्ष उजागर करने की कोशिश की है ।

' खजूर के सेलों की तरह फुटे जो धरती से

उखाडे गये वो ही छान्ट छान्ट कर

कहाँ जाए अखिर

तिनका तिनका घोंसला छोडकर भोला पंछी

हर कोई तो नहीं कर सकता अपनी हर चीज से इस कदर प्यार अछूते जंगलोंके बीच'

वाहरू सोनवणे की 'मेधा और आदिवासी' कविता मे नर्मदा के नाम पर आदिवासीयों का संघर्ष उभरा है । इसमे आदिवासीयों के विस्थापन को लेकर समाजसेविका मेधा पाटकर के संघर्ष और विचारों को व्यक्त किया गया है । इसलिये यह कविता सहज ढंग से आदिवासीयों के विस्थापन की समस्याओंपर जिक्र करती है । इनकी कविताए आदिवासी की पीडा को दर्ज करने की मांग करती है । आदिवासी भोले भाले एवं निर्धन होकर भी अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक है । यह कविता आंतरिक मनकी पख करती है । इसमे आशावाद भी है जो मन के डर को खत्म करके एक नई जिंदगी जीने की चाहत रखती है ।

निर्मला पुतुल :

विस्थापन की प्रास्ती को निर्मला पुतुल ने इस तरह अभिव्यक्त किया है -

"अगर हमारे विकास का मतलब

हमारी बस्तियों को उजाडकर

कल कारखाने बनाने है"

आदिवासी समुदाय के सामने विस्थापन की समस्या अंग्रेजो के काल से ही चली आयी है । ब्रिटिश शासन के दौरान उन्हे रेल्वे लाईन बिछाने के नाम पर उजाडा गया,तो आज भूमंडलीकरण के दौर में जलविद्युत योजनाएं,खदान,फौलादी कारखाने बडे-बडे बांधो की निर्माण आदी के नाम पर विस्थापित किया जा रहा है । आर्थिक उदारीकरण नें आदिवासी समुदाय को बहुत कुछ सोचने के लिए मजबूर किया है । तथाकथित विकास के इस क्रम मे आदिवासी समाज नें अपने सामूहिक पहचान और ऐतिहासिक,सांस्कृतिक विरासत खोई है और उनके हिस्से मे कुछ नही आकर केवल गरीबी, कुपोषण,मृत्युदर मे वृद्धी अशिक्षा, बेरोजगारी और मजदूरी आयी है । इस कविता मे निर्मला पुतुल नें आदिवासी जीवन की कहानी सही ढंग से अभिव्यक्त किया है ।

स्पष्ट आहे की आज के आदिवासी कवियोंद्वारा आदिवासीयों के जीवन के विविध आयमो को, विमर्श को परखने की कोशिश की जा रही है । आने वाले दिनों मे दलित कविता की तरह आदिवासी कविता की लेखन की अधिक संभावनाएं बढ सकती है,क्यूकी आज के यांत्रिक युग मे मनुष्य जाती,धर्म और पक्ष को लांघकर सत्यस्थिती को महत्व दे रहा है । समाज के साथ साहित्य भी बदल रहा है, इसके संकेत आज हिंदी साहित्य मे भी मिल रहे है । अफसोस इस बात का है की स्वतंत्रता के लगबग 75 वर्ष तक लेखकों की नजर ऐसे उपेक्षित समाजपर क्यू नही गई? इसके समाधान के उत्तर स्वयं आज के समाज के लेखकों को एवं कवियोंद्वारा लिखित साहित्य मे ढूंढना आवश्यक है ।

निष्कर्ष :

1. आदिवासी कविता विमर्श सांप्रदायिक भावनाओं को लेकर कई सवालोंका उत्तर ढुंढनें की कोशिश करती है ।
2. आदिवासी कविताओंमे आदिवासी सत्य जीवन और कला पर लेखन हुआ है ।
3. आदिवासी कविताएं आदिवासीयोंके अधिकारोंपर भाष्य करती है ।
4. आदिवासी कविताओं पर बिरसा मुंडा की क्रांती और विचारों का प्रभाव दिखाई देता है ।
5. आदिवासी मूलत: जंगल के दावेदार माने जाते है ।
6. आदिवासी कविताओंमे आदिवासी बोली एवं परंपरा पर चिंता जाहीर की है ।
7. आदिवासी जंगल के बाहर जीवन जिने में विवश है ।
8. आज के आदिवासी कवियों द्वारा आदिवासीयोंके के जीवन के विविध आयाम और विमर्श को परखने की कोशिश की जा रही है ।

संदर्भ :

1. वाहरू सोनवणे - युद्धरत आम आदमी
2. निर्मला पुतुल - अपने घर की तलाश में
3. हरिराम मीणा - समकालीन आदिवासी कविता
4. संपा.डॉ.सुकुमार भंडारे - ईक्कीसवी सदी की हिन्दी कविता
5. भुजंग मेश्राम - आदिवासी साहित्य क्यों?

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संजीव की कहानियों में पारिवारिक समस्याओं का चित्रण

डॉ. रोहिदास धोंडीबा गवारे
सहयोगी प्राध्यापक एवं हिंदी विभागप्रमुख,
अप्पासाहेब र. भा. गरूड महाविद्यालय, शेंदुर्णी जि. जलगाँव, महाराष्ट्र

संजीव जी हिंदी के एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं । वे मुख्यत: उपन्यासकार एवं कहानीकार के रूप में जाने जाते हैं । उनके साहित्य में मानवता, प्रेम, समानता, विश्वबन्धुता, गरीबी, मजदूर, शोषण, बेरोजगारी, दलित-आदिवासी जीवन एवं सहानुभूति आदि का चित्रण दिखाई देता हैं । संजीव जी ने लगभग पंद्रह उपन्यास एवं सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं । उनकी कहानियों में ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका चित्रण उन्होंने नहीं किया हो । उनकी कहानियों में समाज के विभिन्न घटकों के द्वारा होनेवाले आम आदमी के शोषण को मुख्य विषय बनाया गया हैं । समाज में परिवार एक महत्वपूर्ण घटक होता हैं । वर्तमान युग समस्याओं का युग हैं । प्रस्तुत आलेख में उनकी कहानियों में चित्रित पारिवारिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया हैं । आधुनिक व्यवस्था जैसे-तैसे व्यक्तिवादी बनती गई वैसे-वैसे सामाजिक और पारिवारिक संबंध नये रूप धारण करते गए जिसका परिणाम पारिवारिक मूल्यों के परिवर्तन पर हुआ। अपने स्वार्थ के कारण झगड़े शुरू हुए । छोटी-मोटी बातों का निमित्त कर घर से अलग निकलकर नये घर बसने लगे । आज बहुत ही कम ऐसे परिवार दिखाई देंगे जो एक साथ मिलकर एक ही घर में रहते हो । बेटे की शादी करने के बाद बहू आते ही परिवार टूटते हुए पाए जाते है । पति-पत्नी के तनावपूर्ण संबंध, संवेदनहीन रिश्ते, माता-पिता और संतान के बीच तणाव, अर्थाभाव आदि कारणों से पारिवारिक समस्याएँ निर्माण हुई ।

डॉ. कृष्णा पाटील कहते है, "सामाजिक संघटन का मूल आधार परिवार है । परिवार के अध्ययन के बिना समाज जीवन का अध्ययन अधूरा रहेगा, कारण परिवार एक सामाजिक इकाई है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक इकाई के रूप में परिवार बहुत बड़ा घटक है । बगेस एवं लॉक पारिवारिक समूह के बारे में कहते हैं "परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो विवाह, रक्त अथवा दत्तक बंधनों से बंधा होता है । इसके द्वारा एक अकेले घर की रचना होती है । इसके सदस्य पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन की सामाजिक भूमिका में एक-दूसरे से अंतक्रिया तथा अंतर्संम्प्रेषण इससे विदित होता है कि परिवार करते हुए एक सामान्य संस्कृति की रचना करते है।"[2] स्पष्ट होता है कि परिवा व्यक्तियों का समूह होता है और एक दूसरे से बंधकर वह सामान्य संस्कृति की रचना करता है । आज के समय में परिवारों में दरारे दिखाई पडती है ।

पारिवारिक समस्याएँ :-

पति-पत्नी :-

'जसी बहू' कहानी में सितई पंडित जसी बहू की इज्जत लूटता है। 'जसी बहू' का पति जब घर आता है तब वह अपने पर हुए अत्याचार के बारे में बताते हुए कहती है कि, मेरे पेट में सितई का बच्चा पल रहा है। यह सुनते ही जसी उसे मारता-पीटता है। वह कहता है, "निकल मोरे घर से रंडी, छिनार...!!!"[3] यहाँ दोनों के बीच तनावपूर्ण संबंध निर्माण होते है और जसी जसोबहू को त्यागकर दूसरी स्त्री से शादी कर लेता है। 'भूखे रीछ' कहानी में रामलाल और रजिया के बीच झगड़े होते रहते है । जब रजिया उसकी लाचारी को कुरेद बैठी तो

रामलाल जोर-जोर से उसे मारता है। दोनों में तनावपूर्ण संबंध रहते है । 'हलफनामा' कहानी में मजदूर द्वारा अपनी पत्नी को तलाक दिया जाता है क्योंकि सेठ और अपनी पत्नी के बीच अनैतिक संबंधों की भनक उसे लग जाती है । इसके अलावा 'टीस', 'गुफा का आदमी' इन कहानियों में पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के तनावपूर्ण संबंधों के कारण दाम्पत्य जीवन में टूटन दिखाई देती है ।

पिता-पुत्र :-

'जीवन के पार' कहानी में मानसिंह और बामई शादी करना चाहते है । बामई का बाप ज्यादा वधू मूल्य वसूल करने की जिद में विवाह नहीं करता। बामई कमारी ही मर जाती है। 'भखे रीछ' कहानी में रजिया का बाप उसे पाँच हजार रूपये में बेच देता है । 'कठपुतली' कहानी में गरीबी से तंग आकर कल्याणी का बाप उसे एक सेठ को बेच देता है । 'सागर सीमांत में मशीदाबाद की नसीबन को उसका बूढा बाप करीम को पाँच सौ रूपये में बेच देता है । इन कहानियों में गरीबी और अर्थाभाव के कारण बाप को अपनी बेटी बेचनी पड़ी है । 'जीवन के पार' कहानी में वधू मूल्य प्राप्त करने के लालच में एक बाप को अपनी बेटी गंवानी पड़ी है । 'नस्ल' कहानी में जमनालाल के बेटे संज को कृतघ्न पुत्र के रूप में दिखाया है । वह बहुराष्ट्रीय कंपनी में बडे पद पर काम करता है। आर्थिक समृध्दि की स्पर्धात्मक दौड में उसके लिए माँ-बाप एवं रिश्तों का कोई महत्त्व नहीं है ।

'झूठी है तेतरी दादी' इस संग्रह के 'हत्यारा' कहानी में एक बाप अपने कृतघ्न बेटे प्रदीप को हत्यारा घोषित करते हुए अपने दुःख की कहानी बया करता है। कठिन परिस्थिति में प्रदीप की शिक्षा पूरी करवाई। प्रदीप पढ़-लिखकर कंपनी में बड़ा पद हासिल करता है। जिनके कारण वह पढ़ सका उन जन्म देनेवाले माता-पिता को भूल जाता है। अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए बाप कहता है, "उसे अपनी कंपनी के लिए फुर्सत है और माँ-बाप के लिए फुर्सत नहीं। फोन भी नहीं कर सकता! यह कैसा रिश्ता है, कैसी नौकरी !"[4] प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति से मिलना आसान था मगर बाप बेटे से मिलना आसान न था। एक बार प्रदीप को यह झूठी खबर भेजी जाती है कि, तुम्हारे माँ-बाप और भाई डाकुओं द्वारा मार डाले गये है । तब भी प्रदीप पड़ौसी बलविन्दर को खबर भेजता है कि तत्काल आना मेरे लिए संभव नहीं, कंपनी का अरबों का नुकसान होगा इसलिए एक लाख रूपये अकाउंट में जमा कर देता है और परिवार की अंत्येष्टि करने को कहता है । अपने बेटे के कपूत निकलने के दुःख से आहत बाप कहता है, "माना कि दुनिया की कोई भी अदालत उसे सीधे-सीधे हत्यारा घोषित नहीं कर सकती, उसके हाथों में खून का एक धब्बा तक नहीं मिलेगा, लेकिन मैं, उसका बाप जानता हूँ कि वह हत्यारा है, सब का हत्यारा खुद अपना भी आत्महन्ता !"[5] इससे स्पष्ट होता है कि एक बेटा अपने माता-पिता के प्रति इतना निष्ठुर हो गया है कि पिता को उसे हत्यारा कहना पड़ा है । माँ-बाप के सपनों को चूर करनेवाली कपूत संतान को 'नस्ल' कहानी में भी देखा जा सकता है ।

अति महत्वाकांक्षाः-

वर्तमान समय में माँ-बाप बच्चों पर आकांक्षाओं का अतिरिक्त बोझ डाल रहे है। माँ-बाप खुद की अपेक्षाएँ अपने बच्चों पर लाद रहे है। जिसके कारण बच्चों की मानसिकता बिगडती जा रही है। अति महत्त्वाकांक्षा के कारण कभी-कभी उन्हें अपनी संतान को भी गँवाना पडता है। इसका चित्र संजीव की 'ब्लैकहोल' कहानी में देखने को मिलता है। इस कहानी में परमेश्वर प्रसाद की पत्नी अलका समाज में कुछ ऐसा करना चाहती है, जिससे प्रतिष्ठा बढे। अपने बेटे अंकर पर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को लादकर उसे सफल देखना चाहती है। वह

हमेशा अपने बेटे को ताने देती है। अलका कहती है, "तुम पढ़ते नहीं हो.... चौहान का लड़का चौदह-चौदह घण्टे पढ़ता है, मालूम ?"[6] मम्मी के डर डर से वह रात तक पढ़ते रहता है। लेखक कहते है, "अलका जी का कठोर अनुशासन। पढ़ना, पढ़ना और सिर्फ पढ़ना। दिन-रात उनकी चौकीदारी में पढ़ते रहना।"[7] माँ के कठोर अनुशासन में अपनी वार्षिक परीक्षा में बेटा आत्मविश्वास खो बैठता है। पेपर समाप्त होते ही वहीं पर उसकी मृत्यु हो जाती है। इस कहानी में अतिमहत्त्वाकांक्षी माँ अपने बेटे को हमेशा के लिए गँवा बैठती है। वर्तमान समय में यह समस्या बहुत ही गंभीर रूप ले रही हैं । ऐसी बहुत सारी घटनाएँ सुनने को मिल रही हैं । 'ब्लैकहोल' कहानी को पढ़कर हमारे समाज को चिंतन एवं मन करने की आवश्यकता हैं ।

भाई-भाई :-

'वांछित-अवांछित' कहानी में बड़ा भाई राजीव कम वेतन पाता है। उसका छोटा भाई विजय ज्यादा वेतन पाता है इसलिए उसे ज्यादा महत्व दिया जाता है। घर में दोनों के झगड़े होते रहते है। छोटा भाई बड़े को अपमानित करता रहता है। संपन्नता की शान में इन्सानी रिश्ते दम तोड़ते हुए दिखाई देते है। 'निष्क्रमण' कहानी में बड़ा भाई नौकरी के लिए प्रयास करता है पर नौकरी नहीं मिलती। पिता के कहने पर वह शादी करता है। छोटे भाई के पास संपत्ति का बढ़ते जाना और बड़े भाई के बेरोजगार होने के कारण पत्नी और बेटे का उससे दूर हो जाना यह स्थिति उत्पन्न होती है। बड़ा भाई अकेले रहने लगता है । छोटा अपने पहचान के बल पर उसे नौकरी दिलवाना चाहता है, पर उसे वह स्वीकार नहीं करता। भाई हाऊसिंग कॉलनी के लिए बस्ती उजाडना चाहता है तो वह उसके विरोध में लोगों को इकट्ठा करता है। लेकिन उसकी अस्वस्थता की स्थिति में तब छोटा प्रत्यूष दंगा करवाकर बस्ती उजाड़ देता है। बड़ा भाई कहता है, "मुझे रिश्तों के कोडों से और न पीटो प्लीज, वर्षों से भाई का गला घोंटते आ रहे थे, इस बार तो दाह-संस्कार भी कर चुके I"[8] इस प्रकार से हम कह सकते है कि उपभोक्तावादी दौर में भाई-भाई के बीच के रिश्तों में कडवाहट एवं टकराहट देखने को मिलती है ।

पारिवारिक विघटनः-

आज व्यक्ति पारिवारिक सुख की अपेक्षा व्यक्तिगत सुख की ओर उन्मुख होते हुए दिखाई दे रहा है । संजीव की 'नस्ल' कहानी में संग्रामपूर कोलियरी के ओवरमैन जमनालाल आर्थिक अभाव में बेटे संज को पढ़ाते है । संजू बहुराष्टीय कंपनी में काम-काज करता हुआ इतना बड़ा बन जाता है कि वहाँ से रिश्तेदार, माँ-बाप कोई भी दिखाई नहीं देते । जो सपने माँ-बाप ने बेटे के प्रति देखे थे सब चकनाचूर हो जाते है। जमनालाल अपनी पत्नी से कहते है, "वह हमारा था ही कब ? इनसानी नस्लों के जंगल में एक पौधा ही तो था वह, जहाँ से चुन लिया । उन्होंने गोद ले लिया, अपनी पौधाशाला में ग्रो कराया यह मैं नहीं, संजू कह रहा था । गलत नहीं कहा उसने। अब वह उन्हीं की वंशवृध्दि करता या हमारी ? हम सब तो खाद-पानी रहे या बाद में कचरे ।"[9] इस कथन से विदित होता है कि बेटा अपने स्वार्थ के कारण अपने माँ-बाप को भूल गया है । एक बाप जिसने अपना पेट काटकर बच्चे को पढ़ाया था आज वही बेटा सबकुछ भूल गया था ।

'वांछित-अवांछित' कहानी में राजीव का छोटा भाई नौकरी करता है। राजीव काम तो करता है लेकिन उसे वेतन काफी कम मिलता है । घर में पिता भाई, पत्नी एवं उसका बेटा और वह खुद ऐसे पाँच लोगों का परिवार है । छोटा भाई विजय पैसे कमाता है इसलिए उसे महत्व दिया जाता है । राजीव को बार-बार अपमानित

किया जाता है। "वह अपना खोया हुआ सम्मान पाना चाहता था। पत्नी की आँखों में, पुत्र पिता और भाई की आँखों में, लेकिन अजीब ढंग से अपरिचित और बेगाना होता गया।"[10] इस कथन से स्पष्ट होता है कि परिवार में आर्थिक अभाव, उपेक्षा एवं अपमान के कारण पारिवारिक विघटन की समस्या निर्माण होती है ।

अन्य पारिवारिक समस्याएँ :-

'घर चलो दुलारीबाई' कहानी में दुलारीबाई एक विधवा स्त्री है। दुलारीबाई के पिता को ससुरालवाले एवं मायकेवाले मार डालते है। उसके बेटे को भी जहर देते है । ससुराल और मायके में दुलारीबाई की काफी जमीन जायदाद है। मायके और ससुराल के पट्टीदारों में जमीन को लेकर समझौता हो जाता है और उसे घर से बाहर निकाल दिया जाता है । व्यवस्था उसे मृत घोषित करती है । 'बाढ़' कहानी में तिरबेनी काका मुख्य पात्र है । उनके साथ परिवार साजिश करता है । जमीन जायदाद के लिए वह कुटिल डाव रचते है। उनकी जमीन हड़पने के लिए भाई उनकी शादी ही नहीं होने देते। उन्हें ब्रह्मचारी घोषित कर उनकी जमीन अपने नाम करवा लेते है। ऊपर से आत्मीय लगनेवाले रिश्ते अंदर से स्वार्थ से भरे हुए नजर आते है।

'दो बीघे जमीन' कहानी में मजदूर भगत ने मेहनत करके दो बीघे जमीन खरीदी थी । बुढापे में जब वे गाँव पहुँचते है तो भतीजे, बहुएँ, नाती, बेटी तथा गाँव के भूपति जमीन के चक्कर में उनका जीना मुश्किल कर देते है । 'धावक' कहानी में भंबल दा घर परिवार और समाज की जिम्मेदारियों को निभाने में सार्थकता मानते है तो उनके भाई अशोक परिवार और समाज से दूर होते हुए मर्यादित बन जाते है । संजीव की 'अंतराल', 'वांछित-अवांछित', 'नस्ल', 'हत्यारा', 'सीपियों का खुलना', 'माँद' आदि कहानियों में अन्य पारिवारिक संबंधों की समस्या का चित्रण हुआ है।

निष्कर्षत: कह सकते है कि, संजीव जी ने अपनी कहानियों में बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से पारिवारिक समस्याओं को चित्रित किया हैं । पारिवारिक समस्याओं की जड़ में मनुष्य का स्वार्थ एवं अति महत्वाकांक्षा दिखाई देती हैं । सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा हैं । बहुत से परिवारों से धर्म, संस्कृति, परंपरा, संस्कार, बड़ों का सम्मान जैसे नदारद हो गए हैं । पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के तनावपूर्ण संबंध बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं । इनका परिणाम बच्चों पर भी होते हुए देखा जा सकता हैं । बच्चों के बिगड़ने का एक मुख्य कारण यह भी हैं । आज बहुत सारे लड़कों को आर्थिक समृध्दि की स्पर्धात्मक दौड में माँ-बाप एवं रिश्तों का कोई महत्त्व नहीं रह गया है । वर्तमान उपभोक्तावादी दौर में भाई-भाई के बीच के रिश्तों में कडवाहट एवं टकराहट देखने को मिलती है । परिवारों में आर्थिक अभाव, उपेक्षा एवं अपमान के कारण पारिवारिक विघटन की समस्या निर्माण हुई हैं । संजीव जी ने अपनी 'जसी बहू', 'भूखे रीछ', 'ब्लैकहोल , 'घर चलो दुलारीबाई', 'दो बीघे जमीन', 'अंतराल', 'वांछित-अवांछित', 'नस्ल', 'हत्यारा', 'सीपियों का खुलना', 'माँद', 'निष्क्रमण' जैसी आदि कहानियों में पारिवारिक समस्याओं का चित्रण किया हैं । समाज को चिंतन एवं मनन करने के लिए उनकी कहानियाँ सहायक साबित हो सकती हैं जिससे समाज परिवर्तन को दिशा मिलेगी और इन समस्याओं में कमी आएगी । उनकी कहानियाँ समाज को सोचने के लिए मजबूर करनेवाली कहानियाँ हैं ।

संदर्भ -

1. हिंदी की ग्रामीण कहानियों में समाज - डॉ. कृष्णा पाटील, विद्या प्रकाशन कानपु , प्रथम संस्करण 2011, पृ.97
2. समाजशास्त्र विश्वकोश - सम्पा. हरिकृष्ण रावत, रावत प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण 2002, पृ.120
3. संजीव की कथा-यात्रा: पहला पड़ाव - 'जसी-बहू' - संजीव, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.126

4. झूठी है तेतरी दादी - 'हत्यारा' - संजीव, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, पृ. 50
5. वही, पृ.52
6. संजीव की कथा-यात्रा: दूसरा पड़ाव -'ब्लैक होल' - संजीव, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.260
7. वही, पृ.262
8. संजीव की कथा-यात्रा: दूसरा पड़ाव -'निष्क्रमण' - संजीव, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.229
9. संजीव की कथा-यात्रा: दूसरा पड़ाव - 'नस्ल' - संजीव, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ. 354
10. संजीव की कथा-यात्रा: दूसरा पड़ाव - 'वांछित अवांछित' - संजीव, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008, पृ.301.

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

निर्मला पुतुल की कविता में चित्रित नारी विमर्श

डॉ. अनंत भालचंद्र पाटील
हिंदी विभागाध्यक्ष
सी.गो. पाटील महाविद्यालय साक्री

नारी विमर्श आधुनिक हिंदी साहित्य का एक सशक्त एवं अनिवार्य विमर्श है। यह केवल स्त्री–पुरुष समानता का प्रश्न नहीं उठाता, बल्कि सत्ता, संस्कृति, देह, श्रम, भाषा और अस्मिता के उन जटिल संबंधों को उजागर करता है जिनमें स्त्री की स्थिति ऐतिहासिक रूप से निर्मित हुई है। हिंदी साहित्य में नारी विमर्श का विकास मुख्यतः शहरी, शिक्षित और मध्यवर्गीय स्त्री अनुभवों के इर्द-गिर्द हुआ है। किंतु भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक देश में स्त्री का अनुभव एकरूप नहीं हो सकता। यहाँ जाति, वर्ग, क्षेत्र और समुदाय के आधार पर स्त्री के जीवन-संघर्ष भिन्न-भिन्न रूपों में सामने आते हैं। इसी संदर्भ में आदिवासी स्त्री विमर्श एक अलग और विशिष्ट चेतना के रूप में उभरता है। यह विमर्श न केवल पितृसत्ता के विरुद्ध है, बल्कि जाति-आधारित वर्चस्व, राज्य-सत्ता, पूँजीवादी शोषण और सांस्कृतिक उपनिवेशवाद के खिलाफ भी प्रतिरोध की आवाज़ है। आदिवासी स्त्री का संघर्ष दोहरा है एक ओर वह पुरुष प्रधान समाज में स्त्री है, दूसरी ओर मुख्यधारा के समाज में आदिवासी। हिंदी कविता में इस आदिवासी स्त्री चेतना को सबसे प्रामाणिक और सशक्त स्वर निर्मला पुतुल ने प्रदान किया है। उनकी कविताएँ नारी विमर्श को एक नए धरातल पर ले जाती हैं, जहाँ स्त्री केवल पीड़िता नहीं, बल्कि प्रतिरोध, श्रम, स्वाभिमान और सामूहिक स्मृति की वाहक बनकर सामने आती है।

निर्मला पुतुल समकालीन हिंदी कविता की एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। उनका जन्म झारखंड के संथाल परगना क्षेत्र में हुआ। यह क्षेत्र आदिवासी संस्कृति, परंपरा एवं संघर्षों का केंद्र रहा है। संथाल समाज की जीवन-शैली, प्रकृति से जुड़ाव, सामूहिकता तथा संघर्षपूर्ण इतिहास ने निर्मला पुतुल की चेतना को गहराई से प्रभावित किया। निर्मला पुतुल स्वयं एक आदिवासी स्त्री हैं। इसलिए उनका लेखन किसी बाहरी पर्यवेक्षक का नहीं, बल्कि भोगे हुए यथार्थ का दस्तावेज़ है। यही कारण है कि उनकी कविताओं में कृत्रिम संवेदना या आरोपित विचारधारा नहीं मिलती, बल्कि एक स्वाभाविक और आत्मीय स्वर सुनाई देता है। अपनी कविता 'क्या तुम जानते हो' इस में चित्रिन करती है कि-

"क्या तुम जानते हो अपनी कल्पना में

किस तरह एक ही समय में

स्वयं को स्थापित ओर निर्वासित

करती है एक स्त्री?"1

आप ने नारियों की वेदना, पीडा, उपेक्षा एवं विवशता को गहराई से विस्तृत रूप में वर्णन किया है। इन महिलाओं में आदिवासी महिलाओं का भी समावेश है जिनका शोषण बारी-बारी से किया जाता है।

निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी स्त्री के वास्तविक, जमीनी और संघर्षपूर्ण जीवन से गहरे रूप में जुड़ी हुई हैं। वे आदिवासी स्त्री को किसी कल्पनात्मक या आदर्श रूप में नहीं, बल्कि उसके दैनिक जीवन के अनुभवों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं।

सबसे पहले, उनकी कविताओं में आदिवासी स्त्री का श्रमशील जीवन दिखाई देता है। वह जंगल से लकड़ी, महुआ और पत्ते बटोरती है, खेतों में काम करती है और घर-परिवार की जिम्मेदारियाँ निभाती है। यह श्रम उसके जीवन का अनिवार्य हिस्सा है, लेकिन इस श्रम को समाज द्वारा न तो उचित सम्मान मिलता है और न ही अधिकार। दूसरे, निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री के शोषण और पीड़ा को भी यथार्थ रूप में उभारती हैं। आदिवासी स्त्री पितृसत्ता, गरीबी और सत्ता इन तीनों के बीच पिसती है। उसके साथ घरेलू हिंसा, यौन शोषण और सामाजिक अन्याय आम बात है, जिसे कवयित्री बिना बनावट और सजावट के प्रस्तुत करती हैं। तीसरे, उनकी कविताओं में आदिवासी स्त्री की चुप्पी, पीड़ा के साथ-साथ उसकी संघर्षशील चेतना भी दिखाई देती है। वह केवल सहने वाली नहीं है, बल्कि अपने अधिकारों और अस्तित्व को पहचानने लगी है। यह यथार्थ उस स्त्री का है जो धीरे-धीरे सवाल करना और विरोध करना सीख रही है। निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री के जीवन को प्रकृति से जुड़ा हुआ दिखाती हैं। जंगल, नदी, मिट्टी और पहाड़ उसके जीवन का अभिन्न हिस्सा हैं। जिस तरह प्रकृति का दोहन और विनाश हुआ है, उसी तरह आदिवासी स्त्री का भी शोषण हुआ है। यह संबंध उनके काव्य को और अधिक यथार्थवादी बनाता है जैसे-

“वे चाहते है हमसे

कि हम कभी कोई सवाल नही करे उनसे

उनकी नजर से देखें सब कुछ

उनकी ही भाषा में बोले।”2

आदिवासी नारी की पहचान उसकी जीवन-शैली, संस्कृति, प्रकृति-संबंध और सामूहिक चेतना से निर्मित होती है। वह मुख्यधारा की स्त्री की तरह केवल घरेलू या सौंदर्यपरक भूमिका में सीमित नहीं है, बल्कि श्रम, संघर्ष और स्वतंत्रता की प्रतीक है। उसका जीवन जंगल, जमीन, जल और पहाड़ों की गहराई से जुड़ा हुआ है। यही प्राकृतिक परिवेश उसकी पहचान का मूल आधार है। आदिवासी नारी अपने समाज की परंपराओं, रीति-रिवाजों और भाषा को आत्मसम्मान के साथ जीती है और उन्हें बचाए रखने के लिए सजग रहती है। आदिवासी नारी की आत्मचेतना उसे अपने अस्तित्व और अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है। वह जानती है कि उसकी जमीन, उसका जंगल और उसका श्रम कोई दया या उपहार नहीं, बल्कि उसका स्वाभाविक अधिकार है। इस आत्मचेतना के कारण वह बाहरी शोषणकारी शक्तियों के विरुद्ध आवाज उठाती है। जब उसकी भूमि छीनी जाती है, जंगल काटे जाते हैं या उसके श्रम का शोषण होता है, तब वह मौन नहीं रहती, बल्कि प्रतिरोध करती है। यह प्रतिरोध उसकी चेतना की परिपक्वता को दर्शाता है।

आदिवासी नारी की पहचान सामूहिकता में भी निहित है। वह ‘मैं’ से अधिक ‘हम’ में विश्वास करती है। उसका संघर्ष व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामुदायिक होता है। अपने समाज की स्त्रियों और पुरुषों के साथ मिलकर वह अपने अस्तित्व की रक्षा करती है। इसी सामूहिक चेतना के कारण वह अकेलेपन से नहीं टूटती, बल्कि

संघर्ष में और मजबूत होती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के भीतर रहते हुए भी आदिवासी नारी अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र दिखाई देती है। वह श्रम करती है, निर्णयों में भागीदारी निभाती है और अपने विचार व्यक्त करती है। यही स्वतंत्रता उसकी आत्मचेतना को और सशक्त बनाती है। वह स्वयं को किसी के अधीन नहीं, बल्कि जीवन की सहभागी मानती है। इस प्रकार आदिवासी नारी की पहचान केवल एक सामाजिक वर्ग की पहचान नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और संघर्ष की पहचान है। उसकी आत्मचेतना उसे शोषण के विरुद्ध खड़ा होने, अपनी संस्कृति को बचाने और अपने अस्तित्व को स्वयं परिभाषित करने की शक्ति देती है। यही आदिवासी नारी की सच्ची पहचान है।

“क्या हु मैं तुम्हारे लिए

एक तकिया

की कही से थका मांदा आया

और सिर टीका दिया।”3

निर्मला पुतुल की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे प्रकृति और राजनीति को अलग-अलग नहीं, बल्कि टकराव की स्थिति में प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविता में प्रकृति केवल सौंदर्य या पृष्ठभूमि नहीं है, बल्कि आदिवासी जीवन की आत्मा है। वहीं राजनीतिक यथार्थ उस शक्ति के रूप में उपस्थित है जो इस प्राकृतिक जीवन-व्यवस्था को लगातार नष्ट कर रहा है। इसी टकराव से उनकी कविता का मूल स्वर जन्म लेता है। निर्मला पुतुल की कविताओं में प्राकृतिकता का अर्थ जंगल, पहाड़, नदी, मिट्टी, पेड़ और मौसम भर नहीं है, बल्कि यह आदिवासी संस्कृति, स्मृति और अस्तित्व का प्रतीक है। प्रकृति उनके यहाँ माँ है, सहचरी है, जीवनदायिनी है। आदिवासी समाज प्रकृति से अलग होकर जीने की कल्पना भी नहीं कर सकता। स्त्री हो या पुरुष, उनका श्रम, उनका उत्सव, उनका दुःख और उनका प्रेम सब प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए जब कवयित्री जंगल की बात करती हैं, तो दरअसल वे पूरे समुदाय की जीवन-रेखा की बात करती हैं।

इसके विपरीत राजनीतिक यथार्थ निर्मला पुतुल की कविताओं में एक क्रूर, संवेदनहीन और शोषणकारी शक्ति के रूप में सामने आता है। यह यथार्थ विकास, सभ्यता, कानून और राष्ट्र के नाम पर आदिवासियों की जमीन छीनता है, जंगल उजाड़ता है और प्राकृतिक संतुलन को तोड़ता है। उनकी कविताओं में राजनीति सीधे संसद या सत्ता-भवन के रूप में नहीं, बल्कि पुलिस, ठेकेदार, खनन कंपनियों और सरकारी योजनाओं के रूप में प्रवेश करती है। यह राजनीति आदिवासी जीवन को “अवैध” और “पिछड़ा” घोषित कर देती है। प्राकृतिकता और राजनीतिक यथार्थ के इस संघर्ष में आदिवासी नारी की स्थिति सबसे अधिक त्रासद है। एक ओर वह प्रकृति की रक्षक है, दूसरी ओर राजनीतिक हिंसा की सबसे बड़ी शिकार। जंगल कटता है तो केवल पेड़ नहीं गिरते, बल्कि स्त्री की स्मृतियाँ, उसके गीत, उसकी पहचान भी टूटती है। निर्मला पुतुल की कविताओं में यह पीड़ा बहुत सजीव रूप में व्यक्त होती है। प्रकृति के विनाश को वे सीधे स्त्री के शोषण से जोड़ती हैं।

निर्मला पुतुल प्रकृति को आदर्श और राजनीति को मात्र बुरा कहकर नहीं छोड़तीं, बल्कि यह दिखाती हैं कि राजनीतिक यथार्थ किस तरह प्राकृतिक जीवन को अपने हितों के अनुसार नियंत्रित करना चाहता है। उनकी कविता में प्रकृति प्रतिरोध का माध्यम बन जाती है। जंगल बोलता है, नदी गवाही देती है और मिट्टी सवाल

ठठाती है। यह प्रकृति सत्ता के झूठे विकास मॉडल को चुनौती देती है। इस प्रकार निर्मला पुतुल की कविता में प्राकृतिकता बनाम राजनीतिक यथार्थ केवल विषय नहीं, बल्कि एक वैचारिक संघर्ष है। यह संघर्ष आदिवासी अस्तित्व की रक्षा, सांस्कृतिक अस्मिता और मानवीय मूल्यों के पक्ष में खड़ा दिखाई देता है। उनकी कविताएँ हमें यह सोचने पर मजबूर करती हैं कि अगर प्रकृति नष्ट होगी, तो केवल आदिवासी ही नहीं, पूरी मानवता संकट में होगी। यही उनकी कविता की सबसे बड़ी राजनीतिक और मानवीय उपलब्धि है।

“मेरा सबकुछ प्रिय है उनकी नजर में

प्रिय है तो बस

मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने

खेतों में उगी सब्जीयाँ

घर की मुर्गीयाँ।”4

निर्मला पुतुल की कविता की सबसे बड़ी शक्ति उनकी भाषा की सांस्कृतिक ऊर्जा है। उनकी भाषा केवल भाव व्यक्त करने का साधन नहीं, बल्कि आदिवासी जीवन, संस्कृति और संघर्ष की जीवंत अभिव्यक्ति है। वे मानक, संस्कृतनिष्ठ या शहरी हिंदी की बजाय ऐसी भाषा चुनती हैं जिसमें जंगल की गंध, मिट्टी की ऊष्मा और श्रम की खुरदुराहट महसूस होती है। यही भाषा उनकी कविता को विशिष्ट और प्रभावशाली बनाती है। निर्मला पुतुल की काव्य-भाषा में आदिवासी बोली, लोक-शब्द, प्रकृति से जुड़े प्रतीक और जीवनानुभव सहज रूप से समाहित हैं। यह भाषा कृत्रिम नहीं, बल्कि जीवन से उपजी हुई है। उनके शब्दों में गीतात्मकता है, लेकिन वह अलंकारिक सौंदर्य से अधिक लोक-स्मृति और सामूहिक अनुभव से निर्मित होती है। भाषा का यह स्वर पाठक को सीधे आदिवासी समाज के बीच ले जाता है, जहाँ शब्द बोलते नहीं, जीए जाते हैं। उनकी भाषा की सांस्कृतिक ऊर्जा का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका प्रतिरोधी स्वर है। यह भाषा सत्ता की भाषा नहीं है, न ही वह शोषण को ढकने वाले सभ्य शब्दों का सहारा लेती है। इसके विपरीत, यह भाषा प्रश्न करती है, टकराती है और असहमति दर्ज कराती है। उनकी कविता में प्रयुक्त साधारण, बोलचाल के शब्द सत्ता के भारी-भरकम राजनीतिक शब्दों से अधिक प्रभावी साबित होते हैं। यह भाषा आदिवासी समाज की मौन पीड़ा को आवाज़ देती है।

निर्मला पुतुल की भाषा में स्त्री चेतना भी बहुत सशक्त रूप में प्रकट होती है। यह भाषा देह को छिपाती नहीं, न ही उसे बाजारू बनाती है। स्त्री अनुभव यहाँ स्वाभाविक, सहज और आत्मसम्मान से भरा हुआ है। स्त्री की पीड़ा, उसका श्रम और उसका संघर्ष भाषा के माध्यम से एक सांस्कृतिक दस्तावेज बन जाता है। यह भाषा स्त्री को वस्तु नहीं, बल्कि संस्कृति की वाहक के रूप में प्रस्तुत करती है। प्रकृति से जुड़ी शब्दावली उनकी कविता की भाषा को और अधिक ऊर्जा प्रदान करती है। जंगल, पहाड़, नदी, मिट्टी, पत्ते, बीज ये सभी शब्द केवल प्रतीक नहीं, बल्कि जीवित सत्ताएँ हैं। इनके माध्यम से भाषा में एक आदिम लेकिन गहरी संवेदना प्रवाहित होती है। यह संवेदना आधुनिक शहरी जीवन की कृत्रिमता के विपरीत एक वैकल्पिक जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करती है। इस प्रकार निर्मला पुतुल की कविता में भाषा की सांस्कृतिक ऊर्जा उसे केवल साहित्यिक रचना नहीं रहने देती, बल्कि संस्कृति, संघर्ष और पहचान का माध्यम बना देती है। उनकी भाषा आदिवासी समाज की स्मृति

को सुरक्षित रखती है और आने वाली पीढ़ियों के लिए चेतना का स्रोत बनती है। यही भाषा उनकी कविता की आत्मा है और उसकी सबसे बड़ी शक्ति भी।

“संथाल परगना

अब नही रह गया संथाल परगना

बहुत कम बचे रह गये है

अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग।”5

निर्मला पुतुल की कविताएँ आदिवासी समाज की सांस्कृतिक अस्मिता और प्रतिरोध की सशक्त अभिव्यक्ति हैं। उनका काव्य उस समाज की आवाज़ है जिसे लंबे समय से हाशिए पर रखा गया, जिसकी संस्कृति को ‘पिछड़ा’ और जीवन-पद्धति को ‘असभ्य’ कहा गया। निर्मला पुतुल इस दृष्टि का प्रतिवाद करती हैं और आदिवासी संस्कृति को गर्व, आत्मसम्मान और संघर्ष के साथ प्रस्तुत करती हैं।उनकी कविताओं में सांस्कृतिक अस्मिता का आधार प्रकृति है। जंगल, पहाड़, नदी और मिट्टी केवल भौगोलिक तत्व नहीं, बल्कि आदिवासी जीवन की आत्मा हैं। आदिवासी संस्कृति प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व में विकसित हुई है। जब जंगल सुरक्षित है, तब संस्कृति जीवित है; और जब जंगल उजड़ता है, तब अस्मिता संकट में पड़ जाती है। निर्मला पुतुल की कविताएँ इस संबंध को गहराई से रेखांकित करती हैं और बताती हैं कि सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा का अर्थ प्रकृति की रक्षा भी है।

निर्मला पुतुल के काव्य में प्रतिरोध का स्वर बहुत सहज और सशक्त है। यह प्रतिरोध नारेबाज़ी या उग्रता में नहीं, बल्कि जीवन के अनुभवों में निहित है। उनकी कविताएँ सत्ता, विकास और सभ्यता के उन मॉडलों पर प्रश्न उठाती हैं जो आदिवासी समाज को मिटाकर आगे बढ़ना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में ऐसा विकास विनाश का दूसरा नाम है। इसलिए उनकी कविता प्रतिरोध को एक नैतिक और सांस्कृतिक जिम्मेदारी के रूप में प्रस्तुत करती है। आदिवासी नारी निर्मला पुतुल की कविताओं में सांस्कृतिक अस्मिता और प्रतिरोध की केंद्रीय धुरी है। स्त्री यहाँ केवल पीड़िता नहीं, बल्कि संस्कृति की संरक्षिका और प्रतिरोध की वाहक है। वह अपने श्रम, गीतों, परंपराओं और स्मृतियों के माध्यम से संस्कृति को जीवित रखती है। जब उसकी देह और जमीन पर अधिकार किया जाता है, तब उसका प्रतिरोध और तीखा हो जाता है। यह स्त्री चुप नहीं रहती, बल्कि सवाल करती है और अन्याय के विरुद्ध खड़ी होती है। निर्मला पुतुल की भाषा भी सांस्कृतिक अस्मिता और प्रतिरोध का माध्यम है। उनकी भाषा में आदिवासी बोली, लोक-शब्द और प्रकृति से जुड़े प्रतीक शामिल हैं। यह भाषा मुख्यधारा की शुद्ध, संस्कृतनिष्ठ हिंदी के वर्चस्व को चुनौती देती है। भाषा के स्तर पर ही यह कविता एक सांस्कृतिक प्रतिरोध रचती है और यह घोषणा करती है कि आदिवासी अनुभवों को व्यक्त करने के लिए उनकी अपनी भाषा पर्याप्त और सक्षम है। इस प्रकार निर्मला पुतुल की कविता में सांस्कृतिक अस्मिता और प्रतिरोध एक-दूसरे से अलग नहीं, बल्कि गहराई से जुड़े हुए हैं। उनकी कविताएँ आदिवासी समाज को उसकी जड़ों से जोड़ती हैं और उसे अपने अस्तित्व के प्रति सजग बनाती हैं। यह काव्य केवल साहित्यिक सौंदर्य नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना और संघर्ष का दस्तावेज़ है, जो शोषण के विरुद्ध खड़े होने की प्रेरणा देता है।

निर्मला पुतुल की कविताएँ नारीवाद और आदिवासी विमर्श के उस जटिल संघर्ष को सामने लाती हैं, जो मुख्यधारा के स्त्री विमर्श में अक्सर अनदेखा रह जाता है। उनका काव्य आदिवासी स्त्री के अनुभवों को केंद्र में रखता है, जहाँ स्त्री होने का संघर्ष और आदिवासी होने का संघर्ष एक-दूसरे में गुँथे हुए हैं। यहाँ नारीवाद किसी आयातित विचारधारा के रूप में नहीं, बल्कि जीवन-संघर्ष से उपजी चेतना के रूप में उपस्थित है। मुख्यधारा का नारीवाद प्रायः शहरी, शिक्षित और मध्यवर्गीय स्त्री अनुभवों पर आधारित रहा है। निर्मला पुतुल की कविताएँ इस सीमित दृष्टि को चुनौती देती हैं। उनकी आदिवासी नारी केवल पितृसत्ता से नहीं, बल्कि राज्य, पूँजी और तथाकथित विकास की शक्तियों से भी जूझती है। इस तरह उनका नारीवाद केवल लैंगिक समानता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक न्याय की माँग करता है। आदिवासी विमर्श में भूमि, जंगल और सामुदायिक जीवन केंद्रीय तत्व हैं। निर्मला पुतुल की कविताओं में नारीवाद इन्हीं तत्वों से जुड़कर एक अलग रूप ग्रहण करता है। आदिवासी नारी के लिए देह और जमीन अलग नहीं हैं। जिस तरह उसकी देह पर नियंत्रण की कोशिश होती है, उसी तरह उसकी जमीन और जंगल पर भी कब्जा किया जाता है। कवयित्री इस समानांतर शोषण को उजागर करती हैं और इसे प्रतिरोध का आधार बनाती हैं।

निर्मला पुतुल की कविताओं में यह संघर्ष भी दिखाई देता है कि आदिवासी स्त्री को कभी-कभी अपने ही समाज की पितृसत्तात्मक रूढ़ियों से लड़ना पड़ता है। परंतु यह संघर्ष बाहरी शोषण के विरुद्ध संघर्ष से अलग नहीं है। कवयित्री यह स्पष्ट करती हैं कि आदिवासी समाज की समस्याओं को केवल अंदरूनी कहकर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, और न ही बाहरी शक्तियों के शोषण को अनदेखा किया जा सकता है। आदिवासी नारी दोनों मोर्चों पर संघर्ष करती है। नारीवाद और आदिवासी विमर्श के इस द्वंद्व में भाषा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। निर्मला पुतुल की भाषा सत्ता की भाषा नहीं, बल्कि अनुभव की भाषा है। यह भाषा आदिवासी स्त्री की पीड़ा, गुस्से और आत्मसम्मान को बिना किसी सजावट के सामने रखती है। यही सादगी उनकी कविता को वैचारिक रूप से अधिक प्रभावशाली बनाती है।

इस प्रकार निर्मला पुतुल की कविता में नारीवाद और आदिवासी विमर्श एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे को विस्तार देने वाले विचार बन जाते हैं। उनका काव्य यह दिखाता है कि जब तक आदिवासी स्त्री की वास्तविक परिस्थितियों को समझे बिना नारीवाद की बात की जाएगी, तब तक वह अधूरा रहेगा। निर्मला पुतुल की कविताएँ इस अधूरेपन को भरने का सशक्त प्रयास हैं और एक समावेशी, जमीनी नारीवादी चेतना का निर्माण करती

संदर्भ-:

1. निर्मला पुतुल, नगाडे की तरह बजते शब्द, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृ. 8
2. वही, पृ. 34
3. वही, पृ. 28
4. वही, पृ. 73
5. वही, पृ. 26

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

सातपुड़ा के भील समुदाय और उनकी सांस्कृतिक विरासत

शोधार्थी राऊत कालुसिंग करमसिंग, शोध निदेशक प्रो.डॉ.सुलक्षणा जाधव (घुमरे)
देवगिरी महाविद्यालय छत्रपती संभाजीनगर (औरंगाबाद) हिंदी विभाग

प्रस्तावना :

सातपुड़ा के आदिवासी क्षेत्र में अनेक समूह अपना जीवन यापन करते हैं कुछ महत्वपूर्ण आदिवासी समूह में से भील जनजाती एक प्रमुख समूह माना जाता हैं। इस समुदाय के अनेक पर्व त्यौहार एवं सामाजिक प्रथाएं प्रचलित हैं। इस पर्व एवं त्योहार में होली, रानी दिवाली एवं भुगरिया महत्वपूर्ण हैं। साथ ही उनकी जात पंचायत व्यवस्था भी काफी मजबूत मिलती हैं। यह पर्व त्यौहार और उनकी व्यवस्था उनकी सांस्कृतिक विरासत की पहचान हैं। इन सभी संदर्भ एवं तथ्थों की जानकारी हम प्रस्तुत लेख के माध्यम से जानने का प्रयास करेंगे।

होली पर्व :

सातपुड़ा के आदिवासी भील समुदाय का होली पर्व कुछ अनोखे रूप से मनाया जाता हैं। यह पर्व आने के पूर्व ही उनके मन में इस पर्व की धूम मच जाती हैं, वह एक महा पहले ही ब्रह्मचारी करते हैं। गांव के छोटे-छोटे बच्चे और युवा लड़के-लड़कियाँ एक माह के पूर्व ही रात में वे ढोल, डफली बजाते हैं और होली के गीत गाते-गाते नृत्य करते हैं। जैसे-जैसे होली नजदीक आती है, वैसे-वैसे उनका उत्साह बढ़ने लगता हैं। इस होली पर्व के बारे में भारती वळवी लिखती है कि "जिस धार्मिक समारोह में लोगों को हर्ष आनंद और मनःप्रसन्न कि अनुभूति मिलती है उसे उत्सव पर्व कहते हैं"1 इस संदर्भ के आधार पर हम कह सकते हैं कि सातपुड़ा के आदिवासी भील समुदाय पुरे उत्साह के साथ विशेष रूप से होली मनाते हैं। पुरुष लोंग होली के सप्ताह पूर्व से अपना परिवेश एवं होली के लिए लगने वाली सामग्री एकत्रित करते हैं। जैसे बास की लकड़ी से टोपा, औंदुंबर पेड़ के फल, नींबू आदि इनका हार बनाना,घुंगरू, मोर पंख, जैसी अनेक सामग्री एकत्रित करने में व्यस्त हो जाते हैं। इस पर्व के लिए वह इतने धुंधले हो जाते हैं कि उनका दिन कैसे बीत जाता है पता ही नहीं चलता। सातपुड़ा का होली पर्व राग-रंग, उत्साह और स्वच्छंद वातावरण के कारण विशेष आकर्षक का त्यौहार हैं। यह फाल्गुन माह की पूर्णिमा को मनाया जाने वाला आनंद एवं उत्साह का प्रतीक त्यौहार हैं। इस संदर्भ में भारती वळवी लिखती है, कि "सबको निरामय जीवन का आशीर्वाद देने वाली “होली माता” भीलो की मनोकामना पूरी करने वाली देवता है"२ इस संदर्भ से स्पष्ट हो जाता है कि सातपुड़ा के आदिवासी भील समाज का यहां बड़ा और महत्वपूर्ण लोकउत्सव है। फाल्गुन माह के प्रथम चंद्रदर्शन से आरंभ होने वाली होली आगे पंद्रह दिन अर्थात पूर्णिमा तक मनाई जाती हैं। होली के दिन मन्नत पूरी करने के लिए भील लोंग पारंपारिक पहनाव पेहनकर आते हैं। रात भर ढोल ढोलकी बजाकर गीत गाते हैं और गीत के साथ-साथ नृत्य भी करते हैं।

भुंगरियाः

आदिवासी भील समुदाय भी यह पर्व अपने संस्कृति के अनुसार ही मनाते हैं। होली के अवसर पर 'भुंगरिया' मेला बढे हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। यह मेला होली से पाँच दिन पहले शुरू होता हैं और होली के पाँच दिन बाद तक चलता हैं। यह मेला कई गाँवो में बाजार के दिन लगता हैं। इस संदर्भ मे पुष्पा गावित

लिखती है " सप्ताह में एक बार लगने वाला बाजार 'भगोरिया' के दिन अलग ही रूप धारण कर लेता हैं। पूरा वातावरण रंग-बिरंगी परिवेश से भर जाता हैं। बांसुरी और ढोल की ध्वनि गुंजने लगती है।''3 इससे स्पष्ट हो जाता है, कि सातपुडा का भुंगरिया पर्व सबसे अलग दिखाई देता हैं। आदिवासी भील जनजाती के लड़के-लड़कियाँ अपना जीवन साथी चुनते हैं। अगर किसी लड़की को कोई लड़का पसंद आता हैं, तो वह जीवन साथी बनने के लिए तैयार हो जाते हैं। कई उत्साही लड़के-लड़कियाँ अपने गाँव के साथियों के साथ पैदल चलकर 'भुगरिया' के बाज़ार पहुँचते हैं। वे अपने पास मौंजूद सबसे अच्छे कपड़े पहनकर आते हैं। दिन भर बांसुरी की धुन औंर ढोल की थाप पर नाच-गान होता हैं। शाम को जैंसे ही सुरज ढलने लगता हैं, वैसे ही सभी लोंग हाथों में तलवारें लेकर नाचते, उछलते हुए अपने घर वापस लौंट जाते हैं।

रानी दिवाली:

सातपुड़ा के आदिवासी भील समाज में रानी दिवाली का त्यौहार बड़ी उत्साह के साथ मनाते हैं सातपुड़ा के आदिवासी भील समुदाय की अपनी संस्कृति होने के कारण उनके अपने त्यौहार थोड़े अलग दिखाई देते हैं। सातपुड़ा क्षेत्र में रानी दिवाली अलग-अलग दिनों में अलग-अलग गांव में मनाई जाती हैं। इस त्यौहार का आयोजन जनवरी माह में किया जाता हैं विशेषताः सातपुडा के पहाड़ी क्षेत्र में इसका महत्व अधिक रहा हैं। अन्य जाति की दिवाली और भीलों की दिवाली में बड़ा अंतर हैं आदिवासी भील समुदायों की रानी दिवाली यानी घर में दीपक जलाकर रोशनी फैलाकर फटाको की आतिशबाजी नहीं हैं। रानी दिवाली यानी उनके देवी-देवता रानी दिवाली, गिंब देव, राजा फांटा, गांडा ठाकुर, राणी काजल, याहा मोगी माता और ग्राम देवता उनकी स्मृति हैं। रानी दिवाली की पूजा विधि का आयोजन करने के लिए गाँव के पंचमंडल की सभा बुलाई जाती हैं। उसमें पाटिल की मुख्य भूमिका होती हैं। गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति विचार विमर्श करते हैं। ग्राम सभा में चंदा (भालू) इकट्ठा करने का निर्णय प्रमुख होता हैं। चंदा के पैसों से रानी दिवाली पूजा की आवश्यक सामग्री खरीदी की जाती हैं। उनमें भैंसा, मुर्गा ,अगरबत्ती, सिंदूर एवं अन्य चींजे होती हैं रानी दिवाली के संदर्भ में जालमा कालश्या वसावे कहते हैं "पुजारी नौं जातियों की पूजा करते हुए रानी दिवाली ग्रामदेवता, राजा फांटा, गांडा ठाकुर, रानी काजल, इन सारी देवी-देवताओं की पूजा विधि करना यानी रानी दिवाली कहां जाता है"4 इस संदर्भ से स्पष्ट होता है कि भील वहां की प्रकृति से संबंधित घटकों की पूजा करते हैं। भील समाज में रानी दिवाली का त्यौहार बड़ी उत्साह से मनाते हैं।

रानी दिवाली की पूजा आरंभ करने से पहले पाँच दिन का ब्रह्मचर्य करना पड़ता हैं। गाँव के पुरुष और पुजारी सब मिलकर नदी पर नहाने के लिए जाते हैं, उसी दिन वापस गाँव में आकर एक निश्चित एवं सुरक्षित जगह पर सभी गाँव के पुरुष मिलकर मिट्टी के बर्तन में महुवा का फूल भिगोने के लिए रखते हैं। पांचवें दिन शराब निकाली जाती हैं उसी दिन रात को पाटिल के घर पर बहण पूजा होती हैं। गाँव के पुरुष इस विधि के लिए थोड़ा-थोड़ा मरधन (अनाज) लेकर उपस्थित होते हैं। पाटिल के घर के आँगन में गाय के गोबर से लिपा-पोती कर पूजा की जाती हैं। उसके बाद अगले दिन गाँव के बाहर गाँव के मेड़ पर एक निश्चित स्थान पर रानी दिवाली की पूजा होती हैं। वहीं पर पुजारी वाग्देवी के नाम पर भैंसा को बलि देते हैं। एवं अन्य देवी-देवता के नाम पर मुर्गी बलि चढ़ाते हैं। बहण पूजा के नाम पर गाँव के सभी उपस्थित लोगों को आशिर्वाद दिया जाता हैं। मरधन एवं गोबर का तिलक माथे पर लगाकर सबको पुजारी आशीर्वाद देता हैं। इसके पश्चात् उपस्थित सभी लोग भैंसा का मांस सामान हिस्से में बाटकर सबको एक-एक हिस्सा दिया जाता हैं। वहां

हिस्सा लेकर लोग अपने-अपने घर की ओर रवाना होते हैं, औंर दिवाली गई होली आई उलूलूलू....उलूलूलू...ऐसे चिल्लाते हुए निकल जाते हैं। संक्षेप में भील समाज की दिवाली अनोखी होती हैं, जो प्रकृति के साथ संबंध रखती हैं। भील समाज के लोग रानी दिवाली की पूजा विधि करने के बाद दूसरे दिन अपने-अपने घर के बाहर आँगन में नारियल, अनाज, आटा, औंर बाँस की सुकी लकड़ी पर घी डालकर जलती हुँई आग की पूजा अर्चना करते हैं। उस दिन ढोल की ताल औंर बासुरी की धून पर प्रतिष्ठित और बुजुर्गों व्याक्ती आंनदित होकर नाचते हैं। यह एक अनोखा त्यौहार भील समुदाय के लोंग अपनी संस्कृति के अनुसार संपन्न करते हैं।

खलवाड़ीः

सातपुड़ा के आदिवासी भील समाज में खेती-बाड़ी एवं खलवाड़ी की पूजा करने की प्रथा प्रचलित हैं। खेतों से सभी प्रकार की फसल काटकर खलवाड़ी में ईकट्टा की जाती हैं औंर उस फसलों को बैलों की सहायता से अनाज को निकाला जाता हैं। खलवाडी से पूरा अनाज निकालने के बाद उसी दिन खलवाड़ी की पूजा की जाती हैं। जिस परिवार में खलवाडी की पूजा की जाती है, उस घर का पुरुष औंर पुजारी गाँव के लोगों को आमंत्रित करते हैं। यह पूजा दिन ढलने पर याने सूर्यास्त के समय ही की जाती हैं। पूजा आरंभ होने से पहले परिवार का पुरुष तांबे का लौंटा भरकर कुँए का शुद्ध पानी लाता हैं। देवरूगहाल (घास) औंर एक नारियल, सुपारी, सिंदूर आदि सामग्री लाकर खलवाड़ी में रखी जाती हैं। पुजारी पूजा आरंभ करने से पहले स्वयं खलवाड़ी में बैठकर अनाज के ढिंगो के सामने खलवाड़ी के उपकरणों को रखता हैं। जैसे दाती, आकड़ी, सुपड़ी, ताम्हन की डाली औंर सुखे गोबर, रस्सी आदि सामग्री सामने रखकर पुजारी पूजा विधि करता हैं। देवरूगहाल (घास) को पानी में भिगोकर चीटे लगता हैं। अतः पूजा अर्चना खत्म करने के बाद पुजारी उपस्थित सभी लोगों को सिंदूर का तिलक लगाता हैं। औंर पूजा संपन्न करता हैं, उसी दिन मरधन का भोजन बनाया जाता हैं। उस भोजन में तेल,मिर्ची, हल्दी, मसाला जैसे चींजे बिना डाले सिर्फ पानी औंर नमक डालकर दाल चावल बनाया जाता हैं। उस भोजन को भील भाषा में 'आलाहा' कहाँ जाता हैं। उपस्थित लोगों को सागवान के पत्तों में भोजन खिलाया जाता हैं। यह भोजन खाने के लिए बच्चे युवा-युवती बूढे सब आते हैं। इस भोजन का स्वाद कुछ अलग रहता हैं। इसका आस्वाद लेने के लिए लोंग तरस जाते हैं। इस प्रकार आदिवासी भील समाज में अपनी संस्कृति का रूप झलकता हुआ प्रतित होता हैं, कुदरत के साथ प्रकृति जीवन व्यतीत करने वाले यह आदिवासी समाज पर्यावरण के हरेक घटक से प्रेम करता हैं। यह पर्व त्यौहार अपने पूर्वजों से चलते आ रहे हैं, इसीलिए भील समाज आज भी इन परंपराओं और प्रथाओं को पालन करते हुँए दिखाई देते हैं।

गाँव दिवालीः

आदिवासी भील समाज में गाँव दिवाली का अधिक महत्व रहा हैं, लोकनाट्य की दृष्टि से यह गाँव दिवाली भील समुदाय के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह गाँव दिवाली महाशिवरात्री, देव मोगरा माता आदि की स्मृति के अवसर पर गाँव में इस गाँव दिवाली का आयोजन किया जाता हैं। यह दिवाली रात के समय लगती हैं, जिस गाँव में दिवाली का मेला होता हैं उस गाँव में पान के ठेलें, जुगार के अड्डे. एवं खाने के वस्तुओं के अन्य दुकान लगाए जाते हैं। इस मेले में भील लोंग उत्साहित होकर इधर-उधर घूमते हुँए आनंदित होते हैं। दिवाली के संदर्भ में रायसिंग टेब-या वसावे कहते हैं "गांव दिवाली का मेला लोगों के मनोरंजन एवं समाज सुधारक का उपदेश देने के लिए आयोजन किये जाते हैं। आदिवासी लोगों को लोकनाट्य द्वारा संस्कार और अच्छे

विचारों को ग्रहण करने के लिए गाँव दिवाली के मेले लगते हैं। इन भोले-भाले भील समाज के लोगों में सुधार लाने का महत्व पूर्ण कार्य इन गाँव दिवाली के माध्यम से 'आदिवासी समाज सुधारक कला मंडल' द्वारा उपदेश दिए जाते हैं"5 उपर्युक्त संदर्भ से स्पष्ट होता जाता हैं, कि आदिवासी भील समुदाय में गाँव दिवाली का मेला मनोरंजन के साथ-साथ अच्छे विचार और संस्कारों को आत्मसात करने के लिए यह मेला लगता हैं। 'आदिवासी समाज सुधारक कला मंडल' 'सोगाड्या पार्टी' के लोकनाट्य द्वारा लोगों को अच्छे विचार आत्मसात करने की प्रेरणा मिलती हैं। भील समाज के लोंग यह सोंगाड्या पार्टी देखने के लिए लोग दूर-दूर के गाँव से आते हैं और रात भर बैंठकर लोकनाट्य देखते हैं। इस प्रकार यह गाँव दिवाली का मेला सातपुडा क्षेत्र के मेलों में से एक महत्वपूर्ण मेला प्रचलित हैं।

भील जात पंचायतः

भील जनजाति में झगड़ाऊँ या गाँव के नियंत्रण के लिए एक जात पंचायत व्यवस्था होती हैं। जात पंचायत यहा शब्द 'जाति' एवं 'पंचायत' इन दो शब्दों से उत्पन्न हुँआ हैं। जाति इस शब्द का अर्थ है, "वंश, कुल"6 जाति एवं पंचायत शब्द का अर्थ है, "पंच की सभा, पंच निर्णय"7 अतः जात पंचायत का अर्थ हुँआ किसी कुल, वंश के पंच की सभा। भील जनजाति में जात पंचायत का अस्तित्व रहा हैं। भील जनजाति में समाज नियंत्रण एवं न्यायदान का काम जात पंचायत करती हैं। भील जनजाति के प्रत्येक गाँव पाडाओं में एक पंचमंडल होती हैं। यह पंचमंडल व्यवस्थापन का कार्य करती हैं। उस पंचमंडल में पुलिस पाटिल की भूमिका महत्वपूर्ण होती हैं। पारिवारिक झगड़े, धार्मिक कार्य, विवाह की समस्या, खेती का बंटवारा, एवं समाज अनुचित व्यवहार पर पंचमंडल न्याय देती हैं। सातपुडा के आदिवासी भील जनजाति में जात पंचायत का निर्णय ही अंतिम निर्णय होता हैं। जात पंचायत का दंड वसूल करना एवं हिसाब-किताब रखने के लिए गाँव का कारभारी होता हैं। वर्तमान युग में भील समाज भी आपस में होने वाले झगड़े-तंटो को सरकारी न्यायालय में दर्ज करने लगे हैं। लेकिन फिर भी कहीं गाँवो में आज भी जात पंचायत व्यवस्था से ही बढी-बढी समस्याओं को निपटारा जाता हैं। इस प्रकार सातपुडा के भील समाज में प्रत्येक गाँव-गाँव में पंचमंडल मौंजूत होती हैं।

निष्कर्षः

सातपुडा क्षेत्र के आदिवासी भील जनजातियों की संस्कृति का अवलोकन कर के यह निष्कर्ष निकलता हैं, कि आदिवासी भील जनजातियों की उनकी अपनी संस्कृति हैं। इसी संस्कृति के आधार पर इस समाज के अपने नीति-नियम बनाए गँए हैं, जिसके आधार पर अपना जीवन जीते हैं। भील समाज की जीवन पद्धति उनकी अपनी संस्कृति के अनुसार ही निभाते हैं, इन जनजातियों की सामाजिक रूढी-परंपरा के आधार पर बनी हुँई है। इन रीति- रिवाजों एंव सामाजिक नीति-नियमों का पालन यह जनजाति आज भी पूरी श्रद्धा के साथ करती हैं। जिसके आधार पर उनका अपना अलग अस्तित्व समाज के सामने दिखाई देता हैं। आज के आधुनिकीकरण का प्रभाव आदिवासी भील समुदायों पर भी थोड़ा बहुत मात्रा में दिखाई देने लगा हैं। लेकिन फिर भी यह संस्कृति प्रिय समाज अपनी परंपराओं एंव संस्कृति का पालन करते हुए दिखाई देता हैं। इन जनजातियों के सामाजिक पर्व-त्यौहार यह समुदाय बड़ी उत्साह के साथ मनाते हैं। प्रकृति परिवर्तन के साथ उनके अपने त्यौहार आयोजित किए जाते हैं उनमें होली पर्व, भगोरिया, रानी दिनाली, खलवाड़ी, गाँव दीवाली, आदि पर्व त्यौहार को सातपुडा के परिवेश में विशेष महत्व रहा हैं। वर्तमान मे भील समुदाय के रीति-रिवाज

एवं त्यौहारों में थोड़ा बहुत परिवर्तन दिखाई देता हैं, लेकिन फिर भी यह संस्कृति प्रिय समाज अपनी परंपराओं का पालन करते हुँए दिखाई देते हैं। संस्कृतिक, सामाजिक दृष्टि से यह जनजाति स्वतंत्रता, समता, बंधुता के भाव से अपनी संस्कृति एवं परंपराओं को अपना कर्तव्य समझकर पालन करते हैं।

संदर्भ ग्रंथः

1. आदिवासी भिल्ल समाज का जनजीवन - भारती वळवी (वाघ) पृष्ठ क्र. 31 वान्या पब्लिकेशन कानपुर प्र.सं.2021
2. वही.....पृष्ठ क्र. 35
3. पश्चिम खान्देशातील आदिवासी लोकसाहित्य- डॉ. पुष्पा गावित पृष्ट क्र. 52
4. साक्षात्कारः नावः जालमा कालश्या वसावे गाँव सेलपानी पो मोलगी तह.अक्कलकुवा जि. नंदुरबार तिथिः 02 / 01 / 2026
5. साक्षातकारः नावः रायसिंग टेंब-या वसावे गाँव मु.पो.मोलगी तह.अक्कलकुवा जि.नंदुरबार तिथिः09 /04 /2023
6. डॉ. हरदेव बाहरी - राजपाल हिंदी शब्दकोश पृष्ठ क्र. 298 राजपाल एवं संन्स दिल्ली संस्करण 2011
7. वही पृष्ठ क्र. 463

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

'जंगल पहाड़ के पाठ कविता संग्रह में आदिवासी विमर्श'

प्रा. सुजाता लखीचंद राय
साईनाथ सोसायटी,शास्त्री नगर
चालीसगांव जि. जलगांव

आदिवासी देश के मूल निवासी है। आदिवासी समाज जंगलों, पहाड़ों पर रहता है। सदियों से अलग-थलग जीवन जीता आया है। उनका रहन -सहन, खान-पान, उत्सव, त्यौहार आदि में विभिन्नता है। वह प्रकृति पर निर्भर है। वह भक्षण की खोज में मारा - मारा भटकता है। वह पशुवत जीवन जीने के लिए मजबूर है। स्वतंत्रता के बाद भी आदिवासीयों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आदिवासी आदिकाल से पिछड़ा ही है। उनकी जीवन व्यथा को सुननेवाला कोई नहीं ।

'जंगल पहाड़ के पाठ' कविता संग्रह आदिवासीयोंकी त्रासदी, उनकी समस्याएँ, उनका संघर्ष, उनकी आशा-आकांक्षाएँ, उनके सपने, उनकी पीड़ा इ.से परिचय कराता है। साथ-साथ आदिवासी जीवन और झारखंडी परिवेश से जुड़े अनदेखे कई मुद्दो, प्रश्नों की स्थानीयता को वैश्विक संदर्भों से जोड़कर एक नया आयाम देता है।

'जंगल पहाड़ के पाठ' कविता संग्रह की अधिकांश कविताएँ आदिवासियोंके अंदर लगी आग को महसूसने और देखने का एक छोटा लेकिन साहसिक प्रयास है।

पहाड़ पर लगी आग को देखती है दुनिया सारी,

हृदय के भीतर लगी आग को कोई नहीं देखता।

सुबह को पहाड़ पर लगी आग को देखती है दुनिया सारी,

हृदय के भीतर लगी आग को कोई नहीं देखता।

श्याम को पहाड़ पर लगी आग को देखती है दुनिया सारी,

हृदय के भीतर लगी आग को कोई नहीं देखता।

कवि महादेव टोप्पो द्वारा लिखित प्रस्तुत कविता संग्रह की अधिकांश कविताएँ विकास, पूँजीवाद, उपभोक्तावाद, सामंतवाद, श्रेष्ठतावाद की विद्रूपताएँ झेलते आदिवासीयों की समस्याओं को लोकतंत्र के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने का प्रयास करती है।

'तुम आए हमारे पास', 'तुमसे, आदमी कहलाने के गुर नहीं सीखूंगा,' ' जंग लगे तीरों पर नयी धार लाने का गीत,' ' आदिवासी गाँव से इंटर पास छात्र का सपना,' ' रचने होंगे ग्रंथ,' ' त्रासदी, एक आशा,' ' प्रजातंत्र में,' ' प्रश्नों के तहखाने में,' ' पहाड़ की नजरोंसे,' ' इतने छले गए है हम,' 'संकट में एकजूट,' ' क्यों नहीं आता गुस्सा ' आदि सभी कविताओं में पीड़ा है। समाज के विरुद्ध आक्रोश है। आदिवासियों की समस्याएँ हैं। समाज के विरुद्ध गुस्सा हैं। विद्रोह है। झारखंड की समस्याएँ है। कविताएँ सवाल उठाती हैं। जवाब चाहती है। आदिवासी लेखन सिर्फ प्रकृति पर सीमित नहीं रहा। इसका विस्तार जीवन के हर क्षेत्र में दिखने लगा है। ये

कविताएँ आदिवासी साहित्य के लिए धरोहर है। मुख्यधारा के समाज को आदिवासी समाज के साथ समान व्यवहार करना चाहिए। बदहाल जिंदगी गुजारती यह जाती, इनका जीवन संघर्ष, इनका आक्रोश कविताओं में हैं। इनकी जाती को सभ्यता, संस्कृति, मनुष्यता सभी ने मारा है।

कविता संग्रह की ' तुम आए हमारे पास' इस कविता में कवि ने मुख्य धारा के लोग किस प्रकार आदिवासीयों का फायदा उठाते है इसका यथार्थ वर्णन किया है। लोग उनकी भाषा सिखकर भाषा विज्ञानी बन जाते है। लोग उनका नृत्य सीखकर आदिवासी संगीत के अंतरराष्ट्रीय विशेषज्ञ बन गए। लोग उनका खान - पान, कंद - मूल, किस मौसम में किसलिए खाते है, कैसे खाते है? इन सबसे परिचय करवाकर, जंगल पहाड़ों में उन्हीं के साथ घूमकर, उनसे औषधियाँ सीखकर जड़ी बूटियों के विशेषज्ञ बन गए। उनके राष्ट्रीय - अंतराष्ट्रीय जर्नलों में लेख प्रकाशित होने लगते है। वे देशी-विदेशी विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने लगते है। इन्ही से सिखी गई दवाईयोंको जब आदिवासी बाजारों में तलाशता है तब दुकानदार दवाइयाँ देने से इन्कार कर देता है। कोई इनके रस्मो-रिवाज सिखकर, इनके जीने का ढंग देखकर किताब लिखता है, प्रकाशित करता है जिसमें गाँववालों के साथ उसकी भी फोटो है। वो अब किसी विश्वविद्यालय का प्रोफेसर बन गया है। प्रसिद्ध मानव विज्ञानी है।

कवि कहना चाहते है सबने इनसे इनकी कला सिख ली। अपना विकास कर लिया। आगे बढ़ गए। प्रसिद्ध हो गए। परंतु आदिवासी वहीं पर रह गया। उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

' तुमसे, आदमी कहलाने के गुर नहीं सीखूंगा ' इस कविता में कवि कहते है - कई लोग कहते हम सरकार के कुछ खास है, क्योंकि हमें सरकार से खैरात मिलती है। परंतु यह सब झूठ है। आजादी के इतने वर्षों बाद अगर कोई हुनर सीखा तो वह बर्दाश्त नहीं होता। अगर नहीं सीखता तो कोटे के आदमी का दर्द झेलना पड़ता है। इस देश का नागरिक कहना तो बहुत दूर की बात है तुम तो मुझे आदमी ही नहीं मानते। तुमने हमें घर, द्वार, खेत, खलिहान, भाषा, संस्कृति, अध्यात्म, जंगल, पहाड़, नदी, झरने, पेड-पत्ते, हवा सबसे बेदखल कर दिया। हम चुप रहे। परंतु जब तुम पवित्र नदियोंको गंदे नाले में बदलकर और उसे बचाने का नाटक करते हो तब गुस्सा आता है। तुम्हारी जेबों में पैसा जादा लेकिन आदमी होने की तमिज कम है। अगर मैं इसके खिलाफ कुछ कहूंगा तो मुझे विद्रोही कहेंगे। अगर नहीं बोलूँगा तो कहोगे, कोटे के आदमी को कुछ नहीं आता, इसलिए वह नहीं बोलता। मैं कुछ भी बेहतर करूँ तुम्हें तकलिफ ही होती है। अगर मैं चपरासी की नौकरी पा लूँ अथवा क्लर्क या अधिकारी होने की परीक्षा पास कर लूँ तब भी तुम्हें तकलीफ ही होती है। अगर हिंदी नहीं बोल पाता तो कहते है कोटे के आदमी कुछ नहीं सीखेंगे। अगर अंग्रेजी अच्छी बोलने लगूँ तो कहेंगे - अरे कोटे का आदमी अच्छी अंग्रेजी बोलता है इन्हें सरकार , मिशनरियों ने बहुत सिर चढ़ा दिया है। इन्हें पटक! पटक ! पटक !, अच्छा काम नहीं करता हूँ तो कोटे का आदमी। बहुत अच्छा काम कर लेता हूँ, तो कोटे का आदमी ज्यादा जान गया इसके ज्ञान को करो कंट्रोल। आखिर कवि प्रश्न करता है - आखिर मैं क्या करूँ ? अनुसंधान करने पर पता चलता है इनके पूर्वजों ने ही ताड़ने के लायक समझा इसलिए उन्हीं की परंपरा ये चला रहे है। परंतु अब सहते - सहते हद हो गयी है। अब अर्जुन को बचाने के लिए एकलव्य अँगूठा नहीं देगा। कवि के पुरखों ने जो सहा अब कवि नहीं सहना चाहता। अब कवि चूप नहीं रहेगा। कुछ बोलकर, कुछ लिखकर अपनी तकलिफें कहेंगा जरूर। कवि पूछते है - कमजोर लोगों को मजबूत बना लेने में तुम्हें एतराज क्यों हैं? कुछ लोगों को कमजोर बनाएँ रखने की तुम्हारी जीद क्यों है? मैं ऐसे ही अप्रिय सवाल

पूछता रहूँगा। परंतु तुमसे , आदमी कहलाने के गुर नहीं सीखूंगा। क्योंकि तुम आदमी कहलाने के लायक हो ही नहीं । प्रस्तुत कविता में समाज के लिए विद्रोह है। गुस्सा है।

' जंग लगे तीरों पर नयी धार लाने का गीत ' कविता में कवि आदिवासीयों को अपने - आप को पहचानने की प्रेरणा दे रहे है। उन्हें जागने के लिए कह रहे है। नया गीत रचने की प्रेरणा दे रहे है। स्वयं को जानो - पहचानों। तुम्हारे जंग लगे तीरों को नया बनाओ। अपने अस्तित्व को पहचानों क्योंकि प्रकृति भी यही चाहती है। ' कब तक ' कविता में कविने चौथी श्रेणी के नागरिक का दर्द बताया है। कई पंचवार्षिक योजनाएँ जंगल में लागू हुई। लोग कहने लगे अब आदिवासी, दलित, वनवासी सभ्य हो जाएंगे। शिक्षित होंगे। राजनीतिक , सामाजिक क्षेत्र में इनका अस्तित्व दिखाई देगा। पंचवार्षिक योजनाओं के कारण कुछ ही वर्षों में ये मुख्यधारा में शामिल हो जाएंगे। मुख्यधारा वालों की नजरों में इनका वजन बढ़ जाएगा। लेकिन एक सवाल बचा रहेगा , वह कास्ट सर्टिफिकीटों के माध्यम से पहचाने जाने का दर्द। चौथी श्रेणी के नागरिक होने का दर्द। कब तक भोगते रहेंगे , सहते रहेंगे आदिवासी , दलित , वनवासी ? कवि यह प्रश्न पूछ रहे है। इसका उत्तर नहीं है , या मुख्यधारा वाला समाज इसका उत्तर देना नहीं चाहता।

'आदिवासी गांव से इंटर पास छात्र का सपना ' कविता में वनवासी छात्र का सपना दिखाया है। उसे अपने दादा से कुछ नहीं चाहिए। उसे सिर्फ बी.ए. होना है। उसके दादा जो बंगाल, आसाम इलाके में झारखंड से चाय बागानों में मजदूरी करने जाते है। राँची शहर से कोडा जाते वक्त बसो, सड़कों, चौराहों पर अपमानित होते है , उसे ये सब नहीं देखना है। नहीं सहना हैं। दादा की मजदूरी उसे बंद करनी है। इसलिए उसे इंटर पास होना है।

उसी प्रकार ' रचने होंगे ग्रंथ ' कविता में आदिवासीयों , दलितों , वनवासियोंका जो वर्णन ग्रंथ में आया है वह कवि को मान्य नहीं है क्योंकि इन्हें हमेशा इन ग्रंथों में गलत ही बताया गया है। बंदर , भालू या अन्य कोई जानवर अथवा नरभक्षी , शिवभक्त , शक्तिशाली असूर नाम से इनका वर्णन आया है। इन्हें असूर , दैत्य , दानव और न जाने क्या - क्या कहा गया है। इसीलिए कवि ने इन्हें स्वयं अपने ग्रंथ रचने को कहा है।

' त्रासदी एक आशा ' इस कविता में शहरी आदिवासी की त्रासदी कवि ने बताई है। आरक्षण का लाभ उठाकर अब यह आदिवासी शहरी बन गया है लेकिन उसे गांव का जीवन याद आता है। शहर ने तो उसे पूरी तरह अपनाया नहीं क्योंकि उनकी दृष्टी में वह एक आदिवासी है और आदिवासीयोंकी दृष्टि में वह शहरी।

' प्रजातंत्र में ' इस कविता में अन्याय के विरोध में आवाज उठाई है। अपने हक के लिए लड़ना है।

' प्रश्नों के तहखाने में ' इस कविता में आदिवासीयों की जिंदगी, उनका जीवन किस प्रकार संघर्षरत है, हर कोई उनके इस संघर्ष का फायदा उठा रहा है यह कवि ने बताने की कोशिश की है।

' पहाड़ की नजरोंसे ' इस कविता में कवि मुख्यधारा वाले विद्वानों से कहते है कि तुम मेरे बारे में कुछ भी लिखो कुछ भी छापो मैं मान लूँगा लेकिन एक बात नहीं मानूंगा कि , ' कहो तुम स्वयं को मनुष्य ' तुम मुझे कुछ भी कहोगे और स्वयं को मनुष्य कहोगे तो मैं कैसे मान सकता हूँ? क्योंकि उपरवाले ने मुझे और तुम्हें एक जैसा ही शरीर दिया है। हमारे खून का रंग भी एक ही है। अगर उपर वाले ने मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं किया तो मैं तुम्हें मनुष्य कैसे मान लूँ?।

‘ इतने छले गए है हम ’ इस कविता में शहरी आदिवासी की पीड़ा कवि ने बताई है। आदिवासी पढ़ - लिख कर शहरी हो जाता है परंतु शहरवालों के लिए वह आदिवासी है। दलित है। वनवासी है। और गांव वाले लोग उसे अपना नहीं मानते।

उसी प्रकार ‘ संकट में एकजूट ’ इस कविता में संकट के समय आदिवासी किस प्रकार एकजूट होते है यह बताया है । इस कविता के माध्यम से कवि कहना चाहते है जो शहरी लोग उनके लिए संकट खड़ा कर रहे है उस संकट का सामना करने के लिए भी आदिवासी एकजूट हो।

‘ घोड़ा बने रहने की आदत तुम्हारी ’ कविता में कवि का इशारा उनकी तरफ है जो आदिवासियों का सिर्फ फायदा उठाते है , उन्हें उपर आने नहीं देते संकटों का सामना आदिवासी करता है और जब वह लिडर या नेता बनने लगता है , अगुवा बनने लगता है तब आंदोलन की बाँगडोर कोई और सँभाल लेता है। तुम्हें पीछे कर दिया जाता है। तुम्हें घोड़ा बना दिया जाता है। रथ का घोड़ा। पिछले कई वर्षों से यही चल रहा है। वह न कभी सारथी बन पाया न रथपर सवार हुआ। घोड़ा बने रहने की आदत के कारण इक्कीसवी सदी में भी वह तरक्की नहीं कर पाया। उसे तरक्की करने ही नहीं दी गयी यही सत्य है ।

‘ क्यों नहीं आता गुस्सा ’ कविता में कवि पूछ रहे है कि बिना पिए आदिवासी को गुस्सा क्यों नहीं आता ? क्योंकि बिना पिए आदिवासी सब सहता रहता हैं। लेकिन पीए हुए आदिवासी को छेडोगे तो वह मारपीट पर उतर आता है क्योंकि अन्याय के विरुद्ध गुस्सा उसके अंदर भरा हुआ है। वह पीने के बाद ही बाहर निकलता है। कवि अपने भाइयों से पूछना चाहते है कि बिना पिए आदिवासी को गुस्सा क्यों नहीं आता ? अगर बिना पिए गुस्सा आ गया तो समझना उसमें अन्याय के खिलाफ लढ्ने की हिम्मत आ गयी है । अब वह जागृत हो गया है।

इस प्रकार ‘ जंगल पहाड़ के पाठ ’ कविता संग्रह की प्रत्येक कविता में आदिवसियों , दलितों , वनवासियों के जीवन का संघर्ष , उनके सपने , आकांक्षा , पीडा , प्रतिरोध , आक्रोश दिखाई देता है। उनके जीवन का सत्य उनके जीवन में लगी आग और इन सबके लिए जिम्मेदार मुख्य प्रवाह वाला समाज। इन सबका चित्रण कवि ने किया है। कविताएँ पढ़कर आदिवासियों के जीवन में लगी आग को हम महसूस कर सकते है।

महादेव टोप्पो द्वारा लिखित यह यथार्थ कविताओं का संग्रह है। हर एक कविता आदिवासीयों की समस्याएँ , संघर्ष की गाथा है। ये कविताएँ धरती , मनुष्य और मनुष्यता बचाने के लिए चिंतीत और बेचैन भी नजर आती है।

संदर्भ -

जंगल पहाड़ के पाठ - महादेव टोप्पो

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श: संवेदना और सरोकार

डॉ. अंशुमान वल्लभ मिश्र
सहयोगी प्राध्यापक
गी.द.महाजन कला, श्री. के. रा. नवलखा वाणिज्य एवं
म.शे. धारीवाल विज्ञान महाविद्यालय, जामनेर, जि. जलगाँव

सार:

प्रस्तुत शोध-पत्र समकालीन हिंदी साहित्य में उभरते 'वृद्ध विमर्श' के विभिन्न आयामों का विश्लेषण करता है। औद्योगिकरण, वैश्वीकरण और एकल परिवार की बढ़ती प्रवृत्ति ने समाज में वृद्धों की स्थिति को हाशिए पर धकेल दिया है। हिंदी कथा साहित्य, विशेषकर समकालीन उपन्यासों और कहानियों में वृद्धों के अकेलेपन, उपेक्षा, पीढ़ीगत अंतराल और उनके अस्तित्वगत संघर्ष को प्रमुखता से चित्रित किया गया है। यह शोध पत्र इस बात पर प्रकाश डालता है कि कैसे साहित्य वृद्धों को केवल 'दया का पात्र' न मानकर उनके स्वाभिमान और मनोवैज्ञानिक द्वंद्वों को स्वर दे रहा है।

बीजशब्द : समकालीन हिन्दी साहित्य, वृद्ध विमर्श, संवेदना, सरोकार

प्रस्तावना

साहित्य समाज का दर्पण होता है और समाज के बदलते स्वरूप के साथ विमर्श के केंद्र भी बदलते रहते हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श के बाद 'वृद्ध विमर्श' एक अनिवार्य चर्चा के रूप में सामने आया है। वृद्धावस्था जीवन का वह पड़ाव है जहाँ व्यक्ति को शारीरिक ही नहीं, बल्कि मानसिक और सामाजिक संबल की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। किंतु आधुनिकता की दौड़ में 'उपयोगितावाद' की संस्कृति ने वृद्धों को एक अनुपयोगी वस्तु में बदल दिया है।

विषय मंथन :

वृद्ध विमर्श के उदय के पीछे कई सामाजिक-आर्थिक कारण हैं:
१) एकल परिवारों के बढ़ते चलन ने वृद्धों को अपनों के बीच ही 'अतिथि' बना दिया है। २) युवा पीढ़ी की बदलती जीवनशैली में वृद्धों के अनुभव और संस्कारों के लिए स्थान कम होता जा रहा है। ३) विचारों की भिन्नता के कारण संवादहीनता की स्थिति पैदा हो गई है।

हिंदी के प्रमुख कथाकारों ने वृद्धों की समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से उकेरा है। अकेलापन और उपेक्षा: भीष्म साहनी की कालजयी कहानी 'चीफ की दावत' वृद्धों की उपेक्षा का मार्मिक उदाहरण है, जहाँ एक माँ को बेटे की तरक्की के रास्ते में बाधा माना जाता है। वहीं निर्मल वर्मा की कहानियों में वृद्धों का अकेलापन दार्शनिक गहराई के साथ व्यक्त हुआ है।

कृष्णा सोबती के उपन्यास 'समय सरगम' में वृद्धों के जीवन के उस पक्ष को दिखाया गया है जहाँ वे अपने शेष जीवन को गरिमा के साथ जीने की कोशिश करते हैं। यह उपन्यास वृद्धों के बीच के प्रेम और साहचर्य को भी रेखांकित करता है।

आधुनिक साहित्य में 'वृद्धाश्रम' एक नए यथार्थ के रूप में उभरा है। पंकज बिष्ट और मृदुला गर्ग की रचनाओं में इस विडंबना को देखा जा सकता है कि कैसे 'सम्पन्न' घरों के वृद्ध भी आज इन आश्रमों में रहने को विवश हैं।

वृद्ध विमर्श केवल भौतिक सुख-सुविधाओं की कमी तक सीमित नहीं है। यह उनके मनोवैज्ञानिक ह्रास का भी चित्रण है। जब वृद्ध अपने ही घर में 'निर्णय प्रक्रिया' से बाहर कर दिए जाते हैं, तो उनका आत्मविश्वास डगमगा जाता है। समकालीन कहानियों में इस मानसिक पीड़ा को 'मौन' और 'स्मृतियों' के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

प्रमुख रचनाएँ और रचनाकार

उपन्यास एवम् कहानियाँ: 'समय सरगम' (कृष्णा सोबती), 'अंतिम अरण्य' (निर्मल वर्मा), 'कथा सतीसर' (चन्द्रकान्ता)। 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी), 'वापसी' (उषा प्रियंवदा), 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' (ओमप्रकाश वाल्मीकि)।

'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू का अपनी सेवानिवृत्ति के बाद अपने ही परिवार में अनफिट हो जाना वृद्ध विमर्श का सबसे जीवंत उदाहरण है। उपन्यास का मुख्य पात्र, मेहरा साहब, वृद्धावस्था के उस पड़ाव पर हैं जहाँ बाहरी दुनिया से संपर्क लगभग खत्म हो चुका है। उनके लिए जीवन अब केवल बीती हुई स्मृतियों का एक संग्रह है, जो बुढापे की अनिवार्य नियति है।[1]

निर्मल वर्मा ने बुढापे को केवल शारीरिक पतन के रूप में नहीं, बल्कि मृत्यु के साथ एक निरंतर संवाद के रूप में चित्रित किया है। पात्र अपनी आसन्न मृत्यु को लेकर डरे हुए नहीं हैं, बल्कि उसे जीवन के एक शांत और अनिवार्य अंत के रूप में स्वीकार करते हैं।

वृद्धावस्था में व्यक्ति अपनी पहचान और अस्तित्व के अर्थ की तलाश करता है । 'अंतिम अरण्य' में यह 'अरण्य' (जंगल) उस एकांत का प्रतीक है जहाँ मनुष्य अपनी आत्मा के सबसे करीब होता है और सांसारिक मोह-माया से मुक्त होने की कोशिश करता है।[2]

उपन्यास में वृद्ध पात्र और उनके सहायक (कथावाचक) के बीच का संबंध पीढ़ियों के अंतर और उनके बीच की संवादहीनता को भी दर्शाता है। यह दिखाता है कि कैसे एक वृद्ध व्यक्ति आधुनिक समाज के शोर के बीच खुद को पराया महसूस करता है।

देवकी नंदन खत्री के उपन्यास 'चंद्रकांता' और उसके विस्तार 'चंद्रकांता संतति' में 'सती सर' की कहानी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसमें वृद्ध पात्रों (विशेषकर वृद्धा) के माध्यम से 'वृद्धा विमर्श' के निम्नलिखित पहलू उभर कर आते हैं:

कहानी में वृद्धा का पात्र केवल आयु का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह अपार ज्ञान और अनुभव की धनी है। वह राजकुमारों और ऐयारों को अपनी बुद्धिमत्ता से चकित करती है, जो यह दर्शाता है कि वृद्धावस्था ज्ञान का भंडार है । 'सती सर' की वृद्धा पात्र अक्सर रहस्यमयी शक्तियों या तिलक (जादुई कलाओं) की ज्ञाता के रूप में दिखाई देती है। वह समाज के हाशिए पर रहने के बावजूद अपनी विद्या के कारण केंद्रीय भूमिका निभाती है ।

वह अक्सर नायकों का मार्गदर्शन करती है या उन्हें कठिन परिस्थितियों से निकलने का मार्ग बताती है। यहाँ वृद्धावस्था को एक 'मार्गदर्शक' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । कहानी यह भी दर्शाती है कि समाज वृद्धों को किस प्रकार देखता है—कभी भय से, तो कभी सम्मान से। वृद्धा का चरित्र अपनी पहचान और अस्तित्व के लिए संघर्ष करता हुआ भी दिखाई देता है । [3]

संक्षेप में, चंद्रकांता की इन कहानियों में वृद्धावस्था को असहायता के रूप में नहीं, बल्कि शक्ति, अनुभव और रणनीतिक कौशल के रूप में चित्रित किया गया है।

भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' मध्यवर्गीय समाज में वृद्धों की उपेक्षा और उनके प्रति बदलती मानसिकता का एक सटीक चित्रण है। इस कहानी में 'वृद्ध विमर्श' के प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं:

कहानी में माँ को घर की एक "पुरानी चीज़" या "कबाड़" की तरह माना गया है जिसे मेहमानों (चीफ) की नज़र से छिपाने की कोशिश की जाती है। शामनाथ के लिए उनकी माँ सम्मान का पात्र नहीं, बल्कि एक 'समस्या' या 'बोझ' हैं जो उनकी तरक्की के आड़े आ सकती है। यह कहानी युवा पीढ़ी की स्वार्थपरता और पुराने मूल्यों के प्रति उनके अनादर को दिखाती है। बेटा अपनी माँ को केवल तब स्वीकार करता है जब उसे लगता है कि माँ की कला (फुलकारी) और सरलता उसके बॉस (चीफ) को प्रभावित कर सकती है और उसकी पदोन्नति का रास्ता साफ कर सकती है।

शिक्षित होने के बावजूद शामनाथ का अपनी माँ के प्रति व्यवहार "अशिक्षितों" जैसा और संवेदनहीन है। वह माँ की शारीरिक सीमाओं (जैसे कमज़ोर आँखें) की अनदेखी कर उनसे फुलकारी बनवाने का वादा करता है, जो वृद्धों के प्रति आधुनिक समाज की निष्ठुरता का प्रतीक है। उपभोक्तावादी समाज में रिश्तों की तुलना भौतिक लाभों से की जाने लगी है। कहानी में वृद्ध माँ की उपस्थिति को आधुनिक जीवनशैली और दिखावे के लिए 'बाधक' माना गया है। [4]

कृष्णा सोबती द्वारा लिखा हुआ ‘समय सरगम’ उपन्यास के मुख्य पात्र अरण्या (लगभग 70 वर्ष) और ईशान अकेले रहते हुए भी आत्मनिर्भर और स्वाभिमानी हैं। वे अपनी दिनचर्या, खान-पान और शौक (जैसे संगीत सुनना या रेस्तरां जाना) को लेकर सक्रिय हैं, जो वृद्धों के प्रति पारंपरिक 'बेचारेपन' की धारणा को तोड़ता है। जहाँ समाज बुढापे के अकेलेपन को एक श्राप मानता है, वहीं अरण्या और ईशान इसे एक बौद्धिक और दार्शनिक अवसर की तरह जीते हैं। उनके बीच का संवाद भारतीय दर्शन, आत्मा-परमात्मा और समकालीन सामाजिक मुद्दों पर केंद्रित है।

लेखिका ने समाज की उस दुखती रग को पकड़ा है जहाँ उपभोक्तावादी संस्कृति में युवा पीढ़ी वृद्धों के प्रति अपने कर्तव्यों को भूलती जा रही है। प्रभुदयाल जैसे पात्रों के माध्यम से दिखाया गया है कि कैसे बच्चों की संपत्ति के प्रति लालसा वृद्धों के जीवन को असुरक्षित बना देती है। इस उपन्यास में मृत्यु को लेकर कोई आतंक नहीं है। पात्र इसे जीवन की एक स्वाभाविक परिणति के रूप में देखते हैं। अरण्या का मानना है कि सयानों को अलग रहकर अपनी 'बाहर की प्रयोगशाला' में विकसित होना चाहिए, न कि परिजनों के साथ रहकर अपमानित होना। अरण्या एक लेखिका हैं और ईशान एक सेवानिवृत्त अधिकारी। उनकी आर्थिक स्वतंत्रता उन्हें मानसिक गरिमा प्रदान करती है, जो वृद्ध विमर्श का एक अनिवार्य पहलू है—अर्थात वृद्धों का सम्मान उनकी आत्मनिर्भरता से जुड़ा है।[5]

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में अकेलापन और स्मृतियाँ प्रमुख हैं। उनकी कहानियों में वृद्ध पात्र अक्सर अपने अतीत की गलियों में भटकते हुए वर्तमान से कटे हुए प्रतीत होते हैं, जो उनके मानसिक एकांत को दर्शाता है।

समकालीन महिला कथाकारों ने भी वृद्ध स्त्रियों की समस्याओं को शिद्दत से उठाया है। घर के भीतर वृद्ध महिला की स्थिति अक्सर एक 'अवैतनिक नौकरानी' जैसी हो जाती है, जिसे मैत्रेयी पुष्पा ने बखूबी चित्रित किया है।

वृद्ध विमर्श के प्रमुख मुद्दे

शोध के दौरान वृद्ध विमर्श के निम्नलिखित प्रमुख बिंदु उभर कर सामने आते हैं:

पीढ़ीगत अंतराल : नई पीढ़ी की सोच और वृद्धों के संस्कारों के बीच का टकराव वृद्धों को मानसिक रूप से प्रताड़ित करता है। संयुक्त परिवारों के टूटने से वृद्ध अपने ही घर में अजनबी हो गए हैं। बच्चों का विदेश या दूसरे शहरों में बसना उन्हें अकेलेपन की आग में झोंक देता है। आधुनिक भारत में 'ओल्ड एज होम्स' का बढ़ना इस बात का प्रमाण है कि पारिवारिक ताना-बाना बिखर रहा है। साहित्य में इसे एक त्रासदी के रूप में देखा गया है।

आर्थिक और स्वास्थ्य समस्याएँ: सेवानिवृत्ति के बाद आर्थिक रूप से बच्चों पर निर्भरता वृद्धों के स्वाभिमान को चोट पहुँचाती है।

वृद्ध विमर्श केवल भौतिक अभावों की कहानी नहीं है, बल्कि यह एक मनोवैज्ञानिक युद्ध है। वृद्धावस्था में व्यक्ति 'अप्रासंगिक' होने के भय से ग्रस्त रहता है। उसे लगता है कि अब समाज और परिवार में उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह गई है। हिंदी कहानियों में इस 'यूज एंड थ्रो' की मानसिकता पर कड़ा प्रहार किया गया है।[6]

निष्कर्ष

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श एक महत्वपूर्ण मोड़ पर है। यह विमर्श हमें चेतावनी देता है कि यदि हमने समय रहते अपने संस्कारों और पारिवारिक जड़ों को नहीं सहेजा, तो भविष्य का समाज अत्यंत संवेदनहीन और यांत्रिक हो जाएगा। वृद्ध विमर्श केवल सहानुभूति की मांग नहीं करता, बल्कि सम्मान और सह-अस्तित्व की मांग करता है।

साहित्य ने वृद्धों को केवल 'अतीत का हिस्सा' न मानकर उन्हें 'वर्तमान की इकाई' के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। अंततः, वृद्ध विमर्श हमें यह सिखाता है कि बुढ़ापा कोई अभिशाप नहीं, बल्कि जीवन की एक अनिवार्य और गरिमापूर्ण अवस्था है। वृद्ध विमर्श आज के साहित्य में मानवीय संवेदनाओं को पुनर्जीवित करने का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरा है।

समकालीन हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श समाज को उसकी नैतिकता और कर्तव्यों की याद दिलाता है। साहित्य ने वृद्धों को केवल 'परजीवी' के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत इकाई के रूप में प्रस्तुत किया है। आज

आवश्यकता इस बात की है कि वृद्धों को समाज की मुख्यधारा से जोड़ा जाए और उनके अनुभवों को बोझ समझने के बजाय पूँजी माना जाए। वृद्ध विमर्श अंततः मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का आह्वान है।

संदर्भ सूची

1. प्रियंवदा, उषा. वापसी (कहानी संग्रह)।
2. वर्मा, निर्मल. अंतिम अरण्य, राजकमल प्रकाशन।
3. खत्री, देवकीनंदन, चंद्रकांता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. साहनी, भीष्म. प्रतिनिधि कहानियाँ, राजपाल एंड संस, दिल्ली।
5. सोबती, कृष्णा (2000). समय सरगम, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. सिंह, नामवर (संपादक). आलोचना (त्रैमासिक पत्रिका), विभिन्न अंक।

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संत रविदासजी का बेगमपुरा और भारतीय संविधान की प्रस्तावना

डॉ. भगवान बाबुराव भालेराव
धनदाई महाविद्यालय, अमलनेर, जि. जलगाँव (महा.)

भारतिय समाज जाति-पाँति में बटा हूआ तथा एक चौथाई समाज को अछूत मानकर पशुता के स्तर पर जीवन जीने को मजबुर करता आ रहा है ।मध्ययुग में संत कबिरदास ने संत परंपरा का प्रवर्तन किया । संत कबिरदासजी के हि समय संत रैदासजी हुये है । जहाँ संत कबिरदासने बहुत ही सक्त, आक्रमक ढंग से जाति-पाँति का विरोध किया वही संत "रविदासजीने अत्यंत संयमित सकारात्कता को"[1] व्यक्त किया है । अस्पृश्य होते हुये भी संत रैदासजी ने अपने व्यक्तित्व और विचारों से समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त किया है ।

"संत रविदासजी का जीवनकाल सन १४५० से १५२० ऐसा माना जाता है"[2]। संत रविदासजी जॉत-पॉत और अस्पृश्यता को झेल रहे थे, मगर वे कबिर की तरह लोहा न लेकर बहुत हि शालिनता के साथ मानवीय समानता का पुरस्कार करते है । वे कहते है :-

"ऐसा चाँहू राज मैं, मिलै सभी को अन्न ।

छोटे बडे सब सम बसै, रैदास रहे प्रसन्न ।।"[3]

जितने भी निर्गुण संत है सभी ने मानवी समानता और बंधुत्व की भावना का पुरस्कार किया है । निर्गणधारा मानवता, भाईचारा, समानता का पुरस्कार करती है । इस संत परंपरा में संत रविदासजी अलग और विशेष इसलिए लगते है । क्योंकि उन्होंने राज्य कैसा होना चाहिए इसकी बेगमपुरा के रूप में एक कल्पना प्रस्तुत की । "आदर्श भारतीय समाज की प्रथम कल्पना अन्य किसी भी भारतीय साहित्य में नही की गई है अथवा अभिजन वर्ग के किसी भी विचारकने उसे कल्पीत नही किया"[4]। आदर्श भारतिय समाज की कल्पना सर्वप्रथम रखी वह भारत के जातीप्रथा विरोधी संत-विचारकोने । इसमें संत कबीरदासजी की "अवधू बेगम देश हमारा"[5] और संत रविदासजी की बेगमपुरा की आदर्शसमाज की कल्पनायें आती है । "संत रैदास सिर्फ कवि ही नहीं, बल्कि उच्च कोटि के चिंतक एंव विचारक भी थे । वे बेगमपुर शहर के आर्किटेक्ट थे"[6]। जैसे डॉ. अम्बेडकर भारतिय संविधान के आर्किटेक्ट है ।तुलसीदास के रामचरितमानस मे 'रामराज्य' की कल्पना की गई है, यह रामराज्य वस्तुतः मनुस्मृती के वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित जातिवादी व्यवस्था है, जहाँ ब्राम्हण सर्वश्रेष्ठ है और बहुसंख्यक लोग नीच कोटी में आते है । किंतु रविदासजीका बेगमपुरा अर्थात बे-गम याने दुःख रहित राज्य जहाँ सभी समान होगें खूश हाल होंगे, काई छोटा या बडा नही होगा, जन्म के आधार पर नही अपितु गुणों के आधार पर सम्मान प्राप्त होगा । अत गुरू रविदासजी के बेगमपुरा के सामने रामराज्य की कल्पना ताज्य है, बेगमपुरा एक आदर्श-व्यवस्था देती है ।

संत रविदासजी ने एक पद में अपने आदर्श समाज की कल्पना प्रस्तुत की हैः-

"अब हम वतन-घर पाया, ऊँचा खेर सदा मन भाया ।

बेगमपुरा सहर को नाऊ, दूख अन्दोह नही ठाऊँ ।।

नां तसवीस खिराज न माल, खौफ न खता न तरस जवाल ।

काइम-दाइम सदा पातशाही, दाम न साम एक सा आही ।।

आबादान सदा मसहूर, जहां गनीयाँ बसै मामूर ।।

सैर करै ज्यों-ज्यों मन भावै, हरम महल मोहिको अटकावै?

कहि रविदास खलास चमारा, जो उस सहर सो मीतु हमारा ।"[7]

इस पद मे अभिव्यक्त चिंतन को अगर हम भारतीय संविधान के 'प्रस्तावना' के साथ तुलना करे तो संत रविदास १३ बी सदी के डॉ. अम्बेडकर ठहरते है और संत रविदासजी 20 वी सदी के अम्बेउकर लगते है । दोनों के विचारों में मौलिक समानता दिखाई देती है ।

दोनों का जन्म अछूत समुदाय में हुआ । दोनों ने अस्पृश्यता के चलते गरीबी, दुःख, अपमान सहा, दोनों अपनी मेहनत और ज्ञान के बलबते उँपर उठे और प्रेरणा के स्त्रोत बने । दोनों ने मानवीय समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधत्व को स्थापित करने का प्रयास किया है । दोनों के मन में अपार करूणा भरी हुई है मानवता के प्रति ।।।

डॉ. अम्बेडकरने भारतीय संविधान की प्रस्तावना लिखी, जिसमें भारतिय लोगों के आदर्श राष्ट्र का प्रतिबिंब उभरता है । –

"हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न,

समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए

तथा उसके समस्त नागरिकों को-
सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक **न्याय.,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सबमें व्यक्ति की

गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को एतव्दारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"[8]

अगर हम इन दोनों महापुरूषों के विचारों को देखे तो इन दोनों काव्यात्क खंडों में बहुत सी सामानताऐं है । प्रस्तावना भारतिय राष्ट्र के राजनैतिक उद्देश्य को व्यक्त करती है वही संत रविदासजी के बेगमपुरा में भी

राजनैतिक भावना की ही अभिव्यक्ति हुई है । स्वतंत्रता वह मूल्य है जिसके लिए कई लोगों ने अपनी शहादत दी है । अतः वह प्रत्येक व्यक्ति हो प्राप्त होनी ही चाहिए । बिना स्वतंत्रता के व्यक्ति गुलाम होता है, अतः प्रस्तावना का यह मुल्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । बेगमपुरा में भी संत रविदासजी इस मूल्य को आपने ढंग से स्थापित करते हैः- 'सैर करै ज्यों-ज्यों मन भाव, हरम महल मोही को अटकावै?' व्यक्ति को किसी भी बात के लिए स्वतंत्रता होगी वो जैसा चाहे, वैसा कर सकता है कोई रोक टोक नही होगी । भारतीय संविधान की धारा १९ में यह अधिकार सभी को प्राप्त होता है।

दुसरा महत्त्वपूर्ण मूल्य है समता-प्रतिष्ठा और अवसर की समता, सभी के समान और सभी को असान अवसर का प्राप्त होना व्यक्ति के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक होता है जिसे हमारी संविधान की प्रस्तावना में अभिव्यक्त किया गया है । संत रविदासजीने अपने आदर्श समाज में भी यही भाव व्यक्त किये है –

'काइम-टाइम सदा पतिशाही, दाम न साम एक सा आही' । वहां सदैव आम्तिक हुकूमत हमेशा कायम रहती है । यह हुकूमत न साम का प्रयोग करती है और न दाम का वहां सभी समान है। इस प्रकार बेगमपुरा और भारतीय संविधान की प्रस्तावना समता इस मूल्य को अपना आदर्श मानती है और व्यक्ती को प्रतिष्ठा देती है तथा सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करती है । गुणों के आधार पर सम्मान प्राप्त होता है न कि जन्म के आधार पर ।

तिसरा महत्त्वपूर्ण मूल्य है बंधुता ! बंधुता के बिना न समाज खडा हो सकता है ना राष्ट्र । किसी भी देश को एक राष्ट्र के रूप में खडा होना है तो उस समाज में बंधुता का होना अनिवार्य है । भारत देश बंधुता के अभाव के कारण ही सैकडो साल गुलाम रहा है । अतः हमारे देश के लिए यह भावना सर्वोच्च महत्व रखती है । ये अम्बेडकर की सबसे बडी देन है राष्ट्र को ।

संत रविदासजी अपने बेगमपुरा में बंधुता की भावना को इस प्रकार व्यक्त करते है 'कहै रैदास खलास चमारा, जो उस सहर को मीतु हमारा'। चर्मकार रैदास कहते हैं की इस शहर में रहनेवाला ही मेरा सच्चा मित्र है।

संविधान की प्रस्तावना सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की ग्वाही देती है। न्याय सभी के तिए समान होगा, उसमें गैरबराबरी नही होगी । इसके लिए भातीय संविधान ने एक अलग न्यायपालिका की व्यवस्था दि है । संत रैदासजीने भी आपने बेगमपुरा के साम्राज्य में न्याय की बात की है । 'मामूर' याने न्यायपर आधारित ! है वे कहते है–

'न तसवीस, खिराज न माल, खौफ खता न तरस जवाल' !

"गुरू रैदास ऐसा राज्य चाहते हे जहां गम, शंका, डर, धोका, लाचरी, अभाव, ऊँच-नीच, टॅक्स, घुमने-फिरते की रूकावट आदि नही होगी"[9]। इस प्रकार सभी को समान मानकर सभी के साथ बराबरी का व्यवहार राज्य की तरफ से होगा । राज्य की ओर से सभी बराबर होंगे। 'दुःख अन्दोह नहीं तिस ठांव' - गुरू रैदास ऐसा बेगमपुरा बसाना चाहते है जहाँ लोगों को दुख न हो । मानवता पर आधारित राज्य की कल्पना हि बेगमपुरा है। भारतीय संविधान की धारा १४ "सभी भारतीय एक बराबर है । सरकार सभी को एक समान समझेगी तथा कानून सब के लिए बराबरा होगा।"[10]

संविधान की प्रस्तावना में लोकतांत्रिक 'गणराज्य' की बात की गई है । प्राचीन भारतीय समाज में गणराज्य व्यवस्था थी वह आदर्श व्यवस्था रही है । अतः उसे भारतीय संविधान के प्रस्तावना में संम्मिलित किया गया है । संविधान मे सामान्य से सामान्य व्यक्ति को राजनैतिक प्रक्रिया का हिस्सा माना गया है । यही भावना गणराज्य शब्द से व्यक्त होती है। संत रैदासजी ने भी इस भावना को परंपरा से जाना था। अतः रैदासजी भी गण-व्यवस्था को श्रेष्ठ मानते हुये अपनी बेगमपुरा की आदर्श व्यवस्था में संम्मलित करते है। वे कहते है 'वहां गण बसैं मामूर' गण का अर्थ है- कबीले या छोटे राज्य । ये व्यवस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था रही है । जहॉं बहुमत से फैसले होते थे । वोट को गीनकर निर्णय होता था । शाक्य गणराज्य में हम ये देख सकते है । गणराज्य (राज्य या state) अनेक होगें किंतु बेगमपुरा एक ही होगा । "गुरू रैदास ने जैसा बेगमपुरा बसाने की कल्पना की थी बाबासाहेब ने भरतीय संविधान बना कर वैसा ही भारत बनाने की नीव रखी है ।"[11]

गुरू रविदासजीने गैरबराबरी का विरोध किया है, छुआछत का विरोध किया है, आर्थिक विषमता को दुःख का कारण माना है । वैसे ही बाबासाहेब ने संविधान में गैरबराबरी को खम्त कर सभी नागरीको को राज्य के समाने समान माना है । अस्पृश्यता को कानूनन् अपराध घोषित किया है। भारतीय संविधान की धारा १७ के अनुसार अस्पृश्यता को खम्त किया गया है । गरीबी खत्म करने के लिए सभी को रोजगार के अवसर समान रूप से उपलब्ध होंगे, कोई भी व्यक्ति जो चाहे वह कार्य कर सकता है, किसी को कोई रोखटाक नही होगी । मौलिक अधिकर भारतीय संविधान की सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है । जो सभी को मानवीय अधिकार प्रदान करती है । और उन अधिकरों को राज्य के व्दारा संरक्षित भी करती है ।

इसप्रकार गुरू रैदासजी का बेगमपुरा और भारतीय संविधान की प्रस्थावना एक ही भावना को व्यक्त करती है और मानवता को सर्वोच्च स्थान पर मानकर राज्य को समता और बंधुता के मार्ग पर अग्रेसित करती है ।

संदर्भ ग्रंथ -

1. बेगमपुराच्या शोधात गेल ऑम्वेट, मधुश्री पब्लिकेशन, नारायण पेठ, पुणे, मराठी आवृत्ती-२०२२, पृ. १२२,
2. बेगमपुराच्या शोधात गेल ऑम्वेट, मधुश्री पब्लिकेशन, नारायण पेठ, पुणे, मराठी आवृत्ती-२०२२, पृ. १२२
3. चमार जाती इतिहास और संस्कृती – एस. एस. गौतम, गौतम बुक सेंटर, प्रकाशक एवं वितरक, शहदरा – दिल्ली, पृ. ११८
4. बेगमपुराच्या शोधात- गेल ऑम्वेट- पृष्ठ ११ (प्रस्तावना)
5. संत कबीर का पुनर्मूल्यांकन – संपा. एस. एस. गौतम, गौतम बुक सेंटर, मंडोली रोड शहदरा – दिल्ली, पृ. २३२
6. छिपाए रैदास बाहर आए- डॉ. राजेंद्र प्रसाद सिंह, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-२०२२, पृष्ठ २२
7. गुरु रविदास - डॉ. धर्मवीर पृ. ६७
8. भारतीय संविधान की प्रस्तावना
9. ऐसा चाहूं राज मैं..... संत सिपाही रैदास- कुलदीप कुमार, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. २३६
10. ऐसा चाहूं राज मैं..... संत सिपाही रैदास- कुलदीप कुमार, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. २३४
11. ऐसा चाहूं राज मैं..... संत सिपाही रैदास- कुलदीप कुमार, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. २७६

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक अम्बेडकरवादी हिंदी दलित साहित्य

डॉ. राहुल भागवत संदानशिव

नूतन मराठा महाविद्यालय,जलगाँव, महाराष्ट्र

वर्णवादी व्यवस्था में जिसका दमन हुआ ,जो कुचला गया ,सताया गया ,प्रताड़ित किया गया ,जिसे पशु से भी तुच्छ दर्जा दिया गया ,वह दलित कहलाया। 'दलित शब्द से ही शोषण का ध्यान सामने आता है। इस शोषण के विरोध में जिन्होंने अपनी कलम के सहारे आवाज उठाई वह दलित साहित्य कहलाया और जिन्होंने अपनी कलम को हथियार की तरह इस्तेमाल किया वह साहित्य विद्रोही साहित्य।

दलित साहित्य किसे माना जाए ? इस संदर्भ में दो प्रकार के मत प्रवाह विद्यमान है। एक मत के अनुसार 'दलित साहित्य उन जातियों का साहित्य है ,जिन्हे अछूत कहा गया। इन अछूत लोगों ने अपनी पीड़ा को वाणी प्रदान की ,उनके खुद के द्वारा रचित साहित्य असल में यही दलित साहित्य है। दूसरे मत के अनुसार जो शोषित है, वंचित है ,पीड़ित एवं प्रताड़ित है जो समग्र रूप से सभी प्रकार के सताएं गए लोंगो के हित की बात करे वह दलित साहित्य की सीमा में आता है। चाहे वह दलितेत्तर द्वारा लिखा साहित्य क्यों न हो ,उसे दलित साहित्य ही माना जाना चाहिए।

अनेक विद्वानों ने दलित साहित्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। दलित साहित्य के बारे में दलित चिंतक कँवल भारती कहते है -" दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रुपायित किया है ,अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है,दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं,बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है। " [1]

इसी प्रकार डॉ.गंगाधर पानतावणे दलित साहित्य की अन्तः चेतना को व्याख्यायित करते हुए कहते है कि " दलित साहित्य हमारे समाज का दर्पण है,जो हमने देखा है, अनुभव किया, भोगा ,जाना ,समझा ,उसका अंकन उत्कटतापूर्वक हुआ है।दलित्व का निर्मूलन हमारे साहित्य का हथियार है। इसलिए सर्व व्यापी क्रांति का यह आव्हान करता है। " [2]

मराठी के प्रसिद्ध कवि नारायण सुर्वे जी का कथन है -" दलित शब्द की मिली-जुली परिभाषाएँ है। इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं ,समाज में जो भी पीड़ित है वे दलित है। ईश्वर निष्ठा या शोषण निष्ठा जैसे बंधनों से आदमी को मुक्त रहना चाहिए। उसका स्वतंत्र अस्तित्व सहज स्वीकार किया जाना चाहिए। उसके सामाजिक अस्तित्व की धारणा समता,स्वतंत्रता और विश्वबंधुत्व के प्रति निष्ठा निर्धारित होनी चाहिए। यही दलित साहित्य का आग्रह है। 'दलित साहित्य' संज्ञा मूलतः प्रश्न सूचक है। महार,चमार,माँग,कसाई,भंगी जैसी जातियों की स्थितियों के प्रश्नों पर विचार तथा रचनाओं द्वारा उसे प्रस्तुत करनेवाला साहित्य ही दलित साहित्य है। [3]

मोहनदास नैमिशराय का कहना है कि -दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में प्रयाय भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है,तो सर्वहारा की सिमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक ,धार्मिक ,आर्थिक राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है,तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक सिमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के

अंतर्गत आ सकता है,लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते। .. अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है,जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है। " [4]

ओमप्रकाश वाल्मीकि के मतानुसार दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों,वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाह्य जनजातियों और आदिवासी जरायमपेशा घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आती है। सभी वर्गों की स्त्रियाँ दलित हैं बहुत कम श्रम मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करनेवाले श्रमिक,बंधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते है। " [5]

दलित साहित्य की परिभाषों के संदर्भ में चाहे जितने मतभेद हो, किन्तु सत्य यही है कि वर्ण और धर्म के नाम पर जिन्हे अपमानित किया गया,सताया गया,दबाया गया,उनकी आवाज विद्रोह के रुप में सामने लाने का काम दलित साहित्य ने ही किया है।

दलित साहित्य प्रयोग सबसे पहले मराठी साहित्य में किया गया। मराठी के अनेक दलित लेखकों एवं कवियों ने अपने अनुभव या आप बीती बातों को आत्मकथा,कविता या साहित्य की अन्य विधाओं में अभिव्यक्त किया। बाबुराव बागुल,दया पवार, शरणकुमार निम्बाले,लक्षण माने,लक्षमण गायकवाड़, ,नामदेव ढसाल,वामनदादा कर्डक आदि। इन मराठी के साहित्यकारों ने अभिजात साहित्यकारों के बराबर का दर्जा हासिल कर लिया। सन 1920 के बाद महाराष्ट्र में कई सुधारवादी विचारों का विस्तार हो रहा था। उसी समय डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर जी के प्रखर विचार मराठी दलित वर्ग में चेतना जगाने का काम कर रहे थे। बाबासाहब के लगभग सभी आंदोलन महाराष्ट्र में हुए। काला राम मंदिर सत्याग्रह, चवदार तले [तालाब] सत्याग्रह, मनुस्मृति दहन ,धर्मान्तर की घोषणा एवं धर्मान्तर आदि। यही कारण है भारत में सबसे पहले आंबेडकरवादी दलित साहित्य का सृजन हुआ। बाबासाहब अम्बेडकर जी का मानना था कि भारत में सारी सामाजिक गड़बड़ी की जड़ वर्ण व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था समाप्त किये बिना न तो जातिवाद समाप्त किया जा सकता है,न छुआछूत। वे अच्छी तरह से जानते थे कि,जब तक समाज शिक्षित एवं संगठित नहीं होगा तब तक यह कार्य संभव नहीं है। इसीलिए उन्होंने नारा दिया था " शिक्षित बनो,संगठित बनो और संघर्ष करो। " बाबा साहब का यह नारा दलितों के लिए मुर्दों में जान फूंकने जैसा साबित हुआ। धिरे-धिरे इस नारे ने आंदोलन का रूप धारण कर लिया। यही से दलित साहित्य का उद्गम और विकास आरम्भ हुआ।

महाराष्ट्र के विदर्भ साहित्य संघ के सामने अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ.बाबा साहब अम्बेडकर जी ने लेखकों को आव्हान करते हुए कहा था -" मै लेखकों को आग्रह करता हूँ कि वे अपनी साहित्यिक विधाओं के माध्यम से उच्च जीवन मूल्यों और सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन करे। अपने क्षितिज को संकीर्ण और सिमित न रखे। उसकी चमक से गावों का अंधकार दूर हो। यह नहीं भूले कि हमारे इस देश में हाशिए पर पड़े और दलितों का एक विशाल संसार है। उनके दुःख उनकी पीड़ा को ठीक से समझे और अपने साहित्य के माध्यम से उनके जीवन स्तर को उपर उठाने का प्रयास करे।" [6]

डॉ.बाबासाहब के साहित्यिक संघ के समक्ष प्रस्तुत विचार दलित साहित्यकारों के लिए प्रेरणा साबित हुए। दलित साहित्यकार जागृत हुए और उन्होंने संकल्प किया कि व्यक्ति के व्यक्तिगत प्रश्नों के साथ-साथ समुदाय के प्रश्नों को भी साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करनी है। यही से अस्मितामूलक अम्बेडकरवादी दलित साहित्य का आरम्भ हुआ।

अस्मिता का अर्थ होता है,व्यक्ति एवं समुह की पहचान। मै कौन हूँ ? यह प्रश्न व्यक्ति की पहचान ,और हम कौन है ? यह समुह की पहचान का द्योतक है। इस दुनियां में इस देश में हमारा वजूद क्या है ? इस दुनियाँ में मै क्या पशुवत जीवन जीने आया हूँ ? गर पशु को भी पूजनीय माना जाता है तो हमें क्यों नहीं ?डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर जी ने दलितों और पीड़ितों के मन में आत्म

सम्मान जगाने का काम किया। उन्हें अहसास दिलाया कि वे भी मनुष्य है,उन्हें स्वाभिमान से जीना होगा। सौ दिन भेड़ की जिंदगी जीने से बेहतर एक दिन शेर की तरह जीना सिखों। बाबासाहब के कारण लोग शिक्षित हुए ,संगठित हुए और संघर्ष की राह अपनाकर अपने बलबूते आज विश्व के समक्ष अपने अस्तित्व को साबित कर कर रहे है।

हिंदी में दलित साहित्य की प्रेरणा मराठी का दलित साहित्य रहा है। मराठी का दलित साहित्य हिंदी में अनुदित होकर आया। मराठी के साथ ही देश की अन्य भाषाओँ का दलित साहित्य भी अनुदित होकर होंदी में आया,जिससे हिंदी दलित साहित्य समृद्ध हुआ है। दलित चाहे किसी राज्य का हो उसने अब अपनी भाषा में आवाज बुलंद करना आरम्भ कर दिया है। हिंदी के दलित साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौरे, कुसुम मेघवाल, श्योराज सिंह बेचैन, सोहनपाल सुमनाक्षर, सूरजपाल चौहान,पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दयांनंद बटोही, चंद्रकुमार बरठे, नीरा परमार, रजनी अनुरागी, मुकेश मानस, ओमप्रकाश मेहरा, कुसुम वियोगी, आर ए दिवाकर, बाबूलाल चावरिया आदि हिंदी के चर्चित अम्बेडकरवादी दलित साहित्यकार है जो " मानवता के महान प्रतिपादक क्रांतिसूर्य डॉ.बाबासाहब अम्बेडकर को अपनी अक्षय प्रेरणा तथा ऊर्जा स्रोत मानकर महात्मा बुद्ध के 'अत्तदीप भव एवं भवतु सब्ब मंगलम के वैश्विक कल्याण के सिद्धांतों को स्वीकार कर विश्व साहित्य में अपनी पहचान बनाते है। [7]

बाबा साहब ने सबको संविधान में समानता का हक़ दिया है। किंतु आज भी वर्णवादी व्यवस्थाने उन्हें अपने हक़ से वंचित ही रखा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस स्थति को सामने रखा है। वे लिखते है -

" चूल्हा मिटटी का , मिटटी तालाब की
तालाब ठाकुर का।
भूख रोटी की ,रोटी बाजरे की
बाजरा खेत का ,खेत ठाकुर का।
बैल ठाकुर का ,पानी ठाकुर का
खेत खलियान ठाकुर के,गली मोहल्ले ठाकुर के फिर ,
अपना क्या है ? गावं ?,शहर ? देश ? [8]

भूमण्डली करण और बाजारवादी सभ्यता ने भारतीय संविधान में अपनाएं गए सामजवाद को किस प्रकार भुला दिया है,का चित्रण वाल्मीकि जी सरल और आसान शब्दों में व्यक्त किया है। इस में विद्रोही तेवर भी है फिर अपना क्या है के माध्यम से सीधा सवाल पूछा गया है।

दलितों पर अत्याचार की खबरों से अखरबार भरे पड़े है। आजाद भारत के संवैधानिक भारत में आज भी इस प्रकार की घटनाएं घटना देश की अधोगति की ओर जाने का संकेत है। दलितो पर अत्याचार आज से नहीं बल्कि पुराण काल से होते आ रहे है ,कवि इस स्थिति को बदलना चाहता है।

‘’नहीं मारा जाएगा तपस्वी शम्बूक, नहीं कटेगा एकलव्य का अंगूठा

कर्ण होगा नायक ,राम सत्तालोलुप हत्यारा। क्या ऐसे दिन आएंगे ?’’ [9]

डॉ.बाबा साहब अम्बेडकर जी ने समानता का अधिकार पाने के लिए महाराष्ट्र के नाशिक शहर में कालाराम मंदिर सत्याग्रह किया था। उन्हें मंदिर जाने से रोका गया। ऐसा नहीं की वे मंदिर जाकर भगवान के भक्त बनाना चाहते थे बल्कि वे केवल

मनुष्यत्व का हक़ माँग रहे थे। मंदिर में नहीं आने दिया ,उन्होंने भगवान को ही छोड़ दिया। कवि मोहनदास नैमिशराय ईश्वर के बारें में लिखते है -

" ईश्वर की मौत, उस दिन होती है
जब, बनता है कोई मंदिर या मठ
जंहा बैठता है कोई,ठग ,लुटेरा गुमराह करनेवाला।" [10]

बाबासाहब के विचार अपनाकर दलितों के जीवन में किस प्रकार के परिवर्तन हुए, कवि नैमिशराय के शब्दों में -

" कल मेरे हाथ में झाड़ू था , आज कलम
कल झाड़ू से मै तुम्हारी गंदगी हटाता था ,
आज कलम से,
मै तुम्हारे भीतर की गंदगी धोऊंगा।
तुम वाचाल हो मुझे मालूम है
तुम चतुर हो मुझे एहसास है
तुम धूर्त और व्यभिचारी हो, मै भुक्तभोगी हूँ
तुमने गंदगी फ़ैलाने के लिए,
वेद पुराण -मनुस्मृति का सहारा लिया,
कल उन्हें जलाने का मुझे अधिकार न था
आज शब्दों की आंच से मै उन्हें जलाऊंगा। " [11]

दलित साहित्यकार यह जान चुके है कि सारी विषमता की जड़ मनुवादी साहित्य है। उनकी दासता के लिए पुराण रचे गए। उन पुराणों को जलाने का साहस आत्सम्मान जगाने का उदाहरण है। जो अम्बेडकर नाम के धग-धग ती ज्वाला के कारण संभव हो पाया है।

वर्णवादी व्यवस्था में महिलाओं को शूद्र का दर्जा दिया गया। वह चाहे उच्च वर्ण की क्यों न हो उसे पुरुष की दासी ही माना गया। पुरुष प्रधान संस्कृति में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हुए कवियित्री शुशीला टाकभौर लिखती है-

" मां बाप ने पैदा किया था गुंगा !
परवरिश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही,निश्चित परिपाटी में पर,बैसाखी के सहारे। ...
गुंजती है आवाज सब दिशाओं में -
मुझे अनंत असीम दिंगत चाहिए
छत का खुला आसमान नहीं,
आसमान की खुली छत चाहिए
मुझे अनंत आसमान चाहिए ! [12]

कवयित्री कहना चाहती है कि स्त्री जन्म होने के कारण उसे जन्म से अपाहिज माना गया। कारण है ,सामाजिक परंपरा,और व्यवस्था। बैसाखी और नश्चित परिपाटी सामजिक ढांचे के प्रतिक शब्द है,जिसके सहारे केवल खड़ा हुआ जा सकता है, चला जा सकता है लेकिन धीरे-धीरे। कवयित्री उड़ाना चाहती है। उसकी आवाज चारो दिशाओं में गूंजती है ,यह एक विद्रोह का स्वर है। मुझे थोड़ी सी आजादी नहीं,बल्कि पूर्ण रूप से स्वंतंत्रता चाहिए। एक प्रकार का आत्मसमान जगाने का भाव स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। प्रस्तुत कविता पुरुष प्रधान संस्कृति एवं वर्णवादी व्यवस्था पर एक साथ प्रहार करती है।

" कहाँ है वह जगह
जहाँ निर्दोष अछूतों को
शोषण से बचाया जाए
कहाँ है वह जगह
जहाँ सब के हित के लिए,बचा है मानव धर्म
कौन देगा भरोसा,जिन्दा रहने के लिए
जिसमें विश्वास हो कि हम भी इंसान है
हमें भी अधिकार है,
समता,स्वतंत्रता,और सम्मान का अधिकार।" [13]

सुशीला टाकभौर की कविता मानवीय पीड़ा,सामाजिक अत्याचार से मुक्ति का मार्ग ढूंढती है। एक ऐसा समाज हो जहाँ दलितों पर अत्याचार न हो,उन्हें सम्मान एवं समानता का अधिकार मिले। केवल वर्ण और जाति के आधार पर जिन्हे सताया जाता हो ऐसी जगह का त्याग एवं जहाँ सभी के लिए मानव एक सामान हो अर्थात करुणा,न्याय ,समतामूलक समाज का निर्माण हो। ऐसी जगह केवल अम्बेडकर द्वारा लिखित संविधान और बुद्ध के प्रज्ञा,शील,करुणा के मूल्यों पर आधारित व्यवस्था में ही संभव है।

हिंदी के अस्मितामूलक अम्बेडकरवादी दलित साहित्यकारों में जयप्रकाश कर्दम एक विशिष्ट नाम है। इन्होने मनुवादी मानसिकता और विषमता वादी ब्राम्हणवादी व्यवस्था पर प्रहार करने का काम किया है। ' वर्णवाद का पहाड़ा'कविता में वे कहते है -

" मास्टर जी ! हम शुक्रगुजार है,कि तुमने हमें पढ़ाया।
प्रगति का रास्ता दिखाया।
लेकिन समता के मार्ग पर तुम खुद नहीं चल पाए।
हमें रखा तुम्हें वर्ण और जाति से ऊपर
पर उठ नहीं पाए तुम अपनी जातीय अहंमान्यता की संकीर्णता से
तुमने सुनाई हमें प्रेम की कहानियां।
सिखाया भाई चारे का सबक
जगाए तुमने राष्ट्रीयता के भाव भी हमारे भीतर।
लेकिन,नहीं चूक पाएं तुम,
पढ़ने से वर्णवाद का पहाड़ा। " [14]

वर्ण और जाति के नाम पर अत्याचार तो रामायण महाभारत के काल से होते आ रहे है। वर्तमान में गुरु के नाम पर सेवारत आधुनिक द्रोणाचार्य से सीधा सवाल पूछा जा रहा है। आधुनिक द्रोणाचार्य अपने दलित शिष्यों को प्रगति का धुँधलासा रास्ता तो दिखाएगा लेकिन मुवादी मानसिकता का त्याग नहीं करेगा।वह समरसता में विश्वास दिखाएगा किंतु समानता को नहीं अपनाएगा। कवि प्रस्तुत कविता के माध्यम से वर्णवादी व्यवस्था को बे नकाब करने का काम करते है।

निष्कर्ष -

हिंदी दलित साहित्य मराठी के दलित साहित्य से प्रेरित है। दलित साहित्य को दो नज़रों से देखा जाता है,एक दलितों द्वारा लिखित दलित साहित्य जो अपने हक़ की लड़ाई खुद लड़ते है। दूसरा सभी प्रकार के पीड़ित लोगों का साहित्य जिसमें महिला,आदिवासी,सर्वहारा की बात की जाती है। यह एक प्रकार का सहानुभूति का साहित्य कहलता है। जब की दलितों द्वारा लिखित साहित्य अपने हक़ और स्वाभिमान की लड़ाई का साहित्य है। दलित साहित्य को लेकर चाहे जितने मत भेद हो,किंतु सताएं हुए लोगों की आवाज बुलंद करने का काम दलित साहित्य ने ही किया। अधिकतर दलित साहित्यकारों पर डॉ.बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर जी का प्रभाव दिखाई देता है। क्योकि बाबा साहब के विचारों में समता,स्वतंत्रता एवं बंधुत्व की प्रधानता है। मानव,मानव में भेद उत्पन्न करनेवाले सभी प्रकार के साहित्य का विरोध है। यह क्रांति का आवाहन है लेकिन बुद्ध के प्रज्ञावान मार्ग से। वर्तमान में साहित्य का उदेश्य मनोरंजन नहीं रहा,साहित्य केवल दर्पण का ही काम नहीं करता, सामाजिक बुराइयों,कुरूपताओं को सामने लाकर कलम रूपी नश्तर से ऑपरेशन करने का काम करता है। इसमें सबसे आगे है,अम्बेडकर वादी अस्मितामूलक दलित साहित्य।

संदर्भ -

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.14
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.23
3. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.15
4. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.14
5. भारतीय भाषाओँ में अनुदित दलित साहित्य, डॉ सुनीता बनसोड [भगत] पृ 65
6. दलित साहित्य विचार -विमर्श [मराठी] डॉ.अनिल गजभिये पृ 92
7. आधुनिक हिंदी साहित्य [विविधा और विमर्श] प्रो शशिकांत 'सावन ' पृ 110
8. दलित निर्वाचित कविताएं संपादक कँवल भारती पृ 56
9. दलित निर्वाचित कविताएं संपादक कँवल भारती पृ 66
10. दलित निर्वाचित कविताएं संपादक कँवल भारती पृ 107
11. दलित निर्वाचित कविताएं संपादक कँवल भारती पृ 111
12. दलित निर्वाचित कविताएं संपादक कँवल भारती पृ 142
13. कंचन जंघा ई जर्नल 1 जनवरी - जून 2020 पृ 144
14. आधुनिक हिंदी साहित्य [विविधा और विमर्श] प्रो शशिकांत 'सावन ' पृ 112 पर उधृत

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

परिवार के अधूरेपन की स्थिति को व्यक्त करता,मोहन राकेश का नाटक 'आधे-अधूरे'

डॉ.वसीम मक्रानी

सहायक प्राध्यापक , हिंदी विभाग,

जी.टी.पाटील कला,वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, नंदुरबार , महाराष्ट्र 425412

मोहन राकेश स्वातंत्योत्तर हिंदी नाटक साहित्य के सशक्त एवं समर्थ हस्ताक्षर है। वे आधुनिक युग के अग्रणी साहित्यकार है। आज वर्तमान में उनके नाट्य विधा की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता । आज मोहन राकेश नाट्य साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। इनका मूल कारण यह है कि वे अपनी अभिव्यक्ति और भाव बोध में सर्वथा नवीन है। मोहन राकेश का लेखन वास्तव में आधुनिकता से ओतप्रोत रहा है। उन्होंने आधुनिकता के संदर्भ में प्रतिमानों की खोज की है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और आधुनिक सभी समस्याओं को उन्होंने अपने लेखन का आधार बनाया है। उनके नाटक इस दिशा में सर्वाधिक सक्रिय हैं मोहन राकेश ने आधुनिक हिन्दी साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया है। यह बदलाव ने न केवल प्रयोगात्मक या ऐतिहासिक दस्तावेजों घटनाओं को आधुनिक स्वरूप में व्यंजित किया है बल्कि हिन्दी नाटक को नये आयाम दिये है।

मोहन राकेश के नाटकों में जहाँ एक ओर इतिहास को नये संदर्भ में व्यक्त किया गया है। नई भगिमायें, विशेषताएँ प्रदान की है वहीं वर्तमान विसंगतियों, विडम्बनाओं, सामाजिक यथार्थ एवं सामाजिक सस्कारिक और तथाकथित मानव संबंधों की प्रगति को विश्लेषित किया गया है। मोहन राकेश के नाट्य साहित्य को सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके नाटक ऐतिहासिक, समस्या मूलक, सामाजिक विषमताओं और मानवीय संबंधों की समन्वित निधि हैं।मोहन राकेश वास्तविक यथार्थवादी नाट्य परम्परा के रचनाकार माने जाते हैं, उन्होंने ऐतिहासिक और कल्पना प्रधान दोनों ही प्रकार के पात्रों की यथार्थ के धरातल पर लाने का प्रयास किया है। इसलिए उनके पात्रों को यथार्थ के घरातल पर चित्रित किया है इस लिए इनके पात्रों में जहाँ कुछ अच्छाइयों अथवा सद्‌गुण उपलब्ध होते है वहाँ बुराइयों अथवा दुर्गुण भी उनमें कम नहीं है। वस्तुतः" हिन्दी में विघटित स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर नाट्य-लेखन शुरू करने का श्रेय मोहन राकेश को ही जाता है।" मोहन राकेश से प्रभावित होकर कई नाटककार इस विषय में नाटकों की रचना करने वाले हुए। [1]

नाटक का विषय और कथानक :-

मोहन राकेश का नाटक 'आधे अधूरे' भारतीय नाटक की एक महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। यह नाटक न केवल हिंदी नाटक की परंपराओं में एक नई लकीर खींचता है, बल्कि यह समाज और रिश्तों के भीतर की जटिलताओं, उनके संघर्षों, और मानसिक द्वंद्वों को उजागर करता है। 'आधे-अधूरे' एक मध्यवर्गीय पारिवारिक त्रासदी है। इस नाटक के सम्बन्ध में लिखा है-"नारी की मुक्ति भावना विघटनशील जीवन-मूल्य, वैवाहिक जीवन की विडम्बना और पुरुष का अधूरापन किन्तु नाटक के केन्द में दो ही बातें मुख्य हैं-घर और घर में रहने वाले लोगों का अधूरापन।"[2]

'आधे अधूरे' नाटक का प्रमुख विषय एक पारिवारिक संकट और उसके भीतर के संबंधों का विघटन है। यह नाटक एक मध्यमवर्गीय परिवार की कहानी है, जिसमें रिश्तों की जटिलताएँ, व्यक्तिगत संघर्ष, और मानसिक असंतुलन प्रमुख रूप से उभरते हैं। नाटक की नायिक सावित्री एक ऐसे परिवार की है, जिसका जीवन अपूर्णता और असंतोष से घिरा हुआ है। उसके जीवन में एक निरंतर संघर्ष है—एक ओर अपने पति के साथ उसका संबंध दूसरी ओर अपने बच्चों और समाज के साथ रिश्तों

का संकट। यह नाटक पारिवारिक जीवन के भीतर के ऐसे मुद्दों को उजागर करता है, जिन्हें अक्सर नज़रअंदाज किया जाता है। सावित्री का पति महेन्द्रनाथ जो अपने व्यक्तिगत संघर्षों में इतना खोया रहता है कि वह अपने परिवार को पूरी तरह से नजरअंदाज कर देता है। उनके रिश्ते में दूरी और समझ का अभाव है, जो अंततः पारिवारिक विघटन का कारण बनता है। नाटक में यह दिखाया गया है कि कैसे सावित्री का परिवार एक दबाव में जी रहा है, जहां हर सदस्य अपने व्यक्तिगत संघर्षों में खोया हुआ है और सामूहिक रूप से वे अपने रिश्तों को सहेज नहीं पा रहे हैं।कुल मिलाकर ये पारिवारिक अन्तर्सम्बन्ध दिलचस्प ढंग से बहुस्तरीय हैं।एक अन्य स्तर पर यह नाट्य-रचना मानवीय सन्तोष के अधूरेपन का रेखांकन है। जो ज़िन्दगी से बहुत कुछ चाहते हैं उनकी तृप्ति अधूरी ही रहती है।[3]

पात्रों का चित्रण :-

'आधे अधूरे' में मोहन राकेश ने पात्रों का चित्रण गहरी संवेदनशीलता और यथार्थवाद से किया है। हर पात्र अपने संघर्ष और मानसिक उलझनों से जूझता हुआ दिखाई देता है। नाटक की नायिका सावित्री न केवल एक माँ और पत्नी है, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्तित्व की तलाश में भी है। वह पारिवारिक जिम्मेदारियों से बंधी हुई है, लेकिन उसकी अपनी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ कहीं न कहीं दब गई हैं। सावित्री का संघर्ष न केवल एक महिला के रूप में है, बल्कि वह अपने आत्म-सम्मान और पहचान को लेकर भी उलझी हुई है।अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती है - स्त्री :(आवेश में उसकी तरफ मुड़ती) मत कहिए मुझे महेन्द्र की पत्नी। महेन्द्र भी एक आदमी है, जिसके अपना घर-बार है, पत्नी है, यह बात महेन्द्र को अपना कहनेवालों को शुरू से ही रास नहीं आई। महेन्द्र ने ब्याह क्या किया, आप लोगों की नज़र में आपका ही कुछ आपसे छीन लिया। महेन्द्र अब पहले की तरह हँसता नहीं,पहले की तरह खिलता नहीं,महेंद्र अब पहले वाला महेंद्र ही नहीं रह गया''।[4]

मोहन राकेश ने 'आधे-अधूरे' में बड़ी-बड़ी बाह्य घटनाओं के संघर्ष के बजाय पात्रों की मनःस्थितियों और संवेदनाओं की टकराहट को आन्तरिक विस्फोट के रूप में तीव्रता एवं सघनता से प्रस्तुत किया है।"इसके चरित्र मध्यवर्ग के सामान्य व्यक्ति हैं- महत्वाकांक्षी, अतृप्त, असन्तुष्ट, कुंठित, आतंकित, क्रुद्ध और अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त । वे रिश्तों में एक दूसरे से कटे-बँधे और सतत तनावत्रस्त हैं।"[5] नाटककार ने उन्हें व्यक्ति विशेष के बजाय उनके जातिगत रूपों में ही उभारा है।

सावित्री का पति महेन्द्रनाथ जो अपने काम में व्यस्त रहता है। उसका और सावित्री का संबंध असहज और तनावपूर्ण है। यह पात्र यह दर्शाता है कि कैसे एक व्यक्ति अपनी निजी आकांक्षाओं के कारण अपने परिवार को नजरअंदाज कर देता है, और इसके परिणामस्वरूप रिश्तों में टूटन आती है।जैसे – '' पुरुष-एक : अपनी ज़िन्दगी चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी ज़िन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आराम-तलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।''[6]

नाटक में सावित्री का बेटा भी महत्वपूर्ण है, जो अपने जीवन के उद्देश्य को लेकर उलझन में है। वह अपने माता-पिता के रिश्ते को समझने और उसे सुधारने कीकोशिश करता है। लेकिन उसके लिए यह एक जटिल कार्य है।मोहन राकेश ने इस पात्र के माध्यम से युवा मानसिकता और भविष्य के प्रति असमंजस को प्रस्तुत किया है।

नाटक के पाच पुरुष एक ही व्यक्ति के विविध रूप या पहलू हैं-वह मिलकर एक जटिल पुरुष-चरित्र की सृष्टि करते हैं। सावित्री भी स्पष्टतः एकायामी चरित्र नहीं है। उसकी तलाश, छटपटाहट, लड़ाई और विवशता उसे एक ज़िन्दा औरत बनाती है जो न तो पुराण काल की सती-सावित्री है और न ही अत्याधुनिक समय की पूरी तरह स्वच्छन्द स्त्री ।" नाटक का अनुभव-क्षेत्र केवल महेन्द्रनाथ-सावित्री के विशिष्ट परिवार तक सीमित नहीं है। जुनेजा, जगमोहन, सिंघानिया की परिस्थितियाँ और दुनिया कुछ

अलग हैं। किन्नी की सहेली सुरेखा के माँ-बाप के भी विवाहेत्तर सम्बन्धों और समस्याओं का संकेत नाटककार ने किया है।"[7] मनोज और बिन्नी के घर-परिवार की परिस्थितियाँ भी नाटक के केन्द्रीय परिवार से भिन्न हैं। फिर भी, सतह से तह में उतरते ही इन सबकी नियति और स्थिति-तमाम भिन्नताओं एवं अन्तरों के बावजूद काफ़ी हद तक समान दिखाई देती है।

संवाद और भाषा :-

'आधे अधूरे' के संवाद बहुत ही प्रभावी हैं और उनमें गहरी संवेदनाएँ झलकती हैं। मोहन राकेश ने संवादों के माध्यम से न केवल पात्रों की मानसिक स्थिति को उजागर किया है, बल्कि समाज की वास्तविकताओं और रिश्तों की जटिलताओं को भी स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। जैसे-''पुरुष-एक : अपनी ज़िन्दगी चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। तुम्हारी ज़िन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिन्दगियाँ चौपट करने का ज़िम्मेदार मैं हूँ। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूँ क्योंकि अन्दर से मैं आराम-तलब हूँ, घरघुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है। ''[8]

नाटक में उपयोग की गई भाषा बहुत ही सटीक और वास्तविक है, जो पात्रों की स्थितियों के अनुरूप है। संवादों में दर्द, तंगहाली और असमंजसता है। राकेश के संवादों में न केवल भावनाओं की गहराई है, बल्कि वे समाज की उन छुपी हुई सच्चाइयों को सामने लाते हैं, जिन्हें अक्सर उपेक्षित किया जाता है । उनके संवादों में यथार्थवादी दृष्टिकोण और सामाजिक आलोचना स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। यह नाटक संवादों के जरिए समाज के अंतर्गत चल रहे संघर्षों को उजागर करता है।

समाज और संस्कृति का परिपेक्ष्य :-

'आधे-अधूरे' सिर्फ़ एक नाटक ही नहीं है। यह हमारे समाज, परिवार, व्यक्ति और उनके पारस्परिक सम्बन्धों में आए और लगातार आ रहे बदलाव का गम्भीर समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है"।[9]नाटक में समाज और संस्कृति की जटिलताएँ प्रमुखता से दिखाई देती हैं। यह नाटक पारंपरिक भारतीय परिवार की संरचना और उसके भीतर के रिश्तों की समस्याओं को बेबाकी से प्रस्तुत करता है। खासकर नारी की स्थिति और उसकी पहचान पर राकेश ने गहरे सवाल उठाए हैं। सावित्री का पात्र यह दर्शाता है कि कैसे एक महिला को समाज और परिवार की परंपराओं से जूझते हुए अपनी स्वतंत्रता और पहचान बनाने की कोशिश करनी पड़ती है। साथ ही, यह नाटक मध्यवर्गीय समाज की निराशाओं और उसके भीतर के अव्यक्त संघर्षों को भी उजागर करता है। परिवार के सदस्य अपने-अपने व्यक्तिगत संघर्षों में उलझे होते हैं, और यह पारिवारिक संबंधों में दरारों का कारण बनता है। इस नाटक के माध्यम से राकेश ने समाज के भीतर हो रहे परिवर्तनों और मानसिक द्वंद्वों को उद्घाटित किया है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :-

'आधे अधूरे' नाटक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। राकेश ने पात्रों के मानसिक संघर्षों को बारीकी से उजागर किया है। सावित्री का संघर्ष केवल बाहरी दुनिया से नहीं है, बल्कि यह उसके आंतरिक द्वंद्व से भी जुड़ा है। वह अपनी पहचान और इच्छाओं के लिए संघर्ष कर रही है, जबकि उसके आसपास के लोग अपनी-अपनी दुनिया में खोए हुए हैं। नाटक के अन्य पात्रों का भी मानसिक संघर्ष उनके निर्णयों और रिश्तों को प्रभावित करता है।

यह नाटक यह दिखाता है कि कैसे व्यक्तिगत अनुभव और मनोवैज्ञानिक स्थिति एक व्यक्ति के जीवन और उसके रिश्तों पर गहरा प्रभाव डालते हैं। पात्रों के भीतर की उलझनें और उनके निर्णय समाज और परिवार के भीतर संघर्षों का रूप धारण कर लेती हैं। महेन्द्रनाथ अपने को 'रबरस्टैम्ब' और 'रबर का टुकड़ा' मानता है। उनका जीवन अर्थहीन बन गया है। महेन्द्र अपने को

खूब जानते थे। इसके आधार पर अपने बारे में उसने कहा- "मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूँ जिसने अन्दर ही अन्दर घर को खा लिया है।" राकेश के सभी नाटकों के नायक खंडित व्यक्तित्व वाले हैं। आधुनिक काल में और आधुनिक साहित्य में महेन्द्र के जैसे अनेक पात्र उपलब्ध हैं। गोविन्द चातक के शब्दों में- "महेन्द्रनाथ आधुनिक संस्कृति की देन है। वह आज का आदमी है जिसने अपने अस्तित्व को खो दिया है और जिसकी इच्छाशक्ति उनकी कुंठित मानसिक स्थिति की शिकार बन गयी है। आधुनिक साहित्य में ऐसे आदमी का हवाला अक्सर दिया जा रहा है जिसकी आस्थाएँ मिट गयी हैं। महेन्द्रनाथ ऐसा ही आधुनिक मानव है।"[10] महेन्द्र आज का एक जीवन्त व्यक्ति है जिसकी सारी अस्मिता खत्म हो चुकी है। अन्त में लाचार और विवश होकर जब वह घर पहुँचता है तब नाटक का अन्त होता है।

निष्कर्ष :-

मोहन राकेश का 'आधे अधूरे' नाटक भारतीय समाज और पारिवारिक रिश्तों की जटिलताओं और संघर्षों को बहुत ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। यह न केवल एक व्यक्तिगत संघर्ष की कहानी है, बल्कि यह समाज के भीतर उभरते हुए मुद्दों भी उजागर करता है। इस नाटक में आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की सामाजिक, मानसिक एवं आर्थिक दशाओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। इस परिवार का हर सदस्य अपने को अधूरा महसूस करता है। परिवार का हर व्यक्ति खुद को पूरा करने की कोशिश करता है। परिवार में पति-पत्नी, एक बेटा और दो बेटियां हैं। पति महेंद्रनाथ बिजनेस में सफल नहीं थे। यह स्थितियां वर्तमान समाज में भी पाई जाती हैं l वर्तमान समय में लोग आर्थिक संकट को झेलकर आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं I इस प्रकार यह नाटक वर्तमान समय को अच्छे से स्पष्ट करता है। इस नाटक में आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार की सामाजिक, मानसिक एवं आर्थिक दशाओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। मोहन राकेश की 'आधे अधूरे' एक ऐसी कृति है जो आज भी प्रासंगिक है और न केवल साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक, मानसिक, और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी यह एक अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ ग्रंथ ;-

1. मोहन राकेश के नाटक -एक विश्लेषणात्मक अध्ययन डॉ. के. गोमतिअम्मा –पृ. 20
2. मोहन राकेश के नाटक -एक विश्लेषणात्मक अध्ययन डॉ. के. गोमतिअम्मा –पृ .78
3. मोहन राकेश – आधे –अधूरे पृ . 19
4. मोहन राकेश – आधे –अधूरे पृ .110
5. मोहन राकेश – आधे –अधूरे पृ .12
6. मोहन राकेश – आधे –अधूरे पृ .58
7. मोहन राकेश – आधे –अधूरे पृ .12
8. मोहन राकेश – आधे –अधूरे पृ .58 [9] वही पृ .8
9. डॉ. गोविन्द चातक - आधुनिक नाटक का मसीहा : मोहन राकेश, पृ. 86

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

लघु कथाओं में व्यंजित दलितों की व्यथा

डॉ जे विजया भारती
हिन्दी विभागाध्यक्ष
एस जी ए जी डी सी, एलमंचिली, आंध्र प्रदेश

लघु कथा अत्यंत संक्षिप्त कथा विधा है। अंग्रेजी में इन्हें 'फ्लैश स्टोरीज' या 'फ्लैश फिक्शन' कहा जाता है। लघु कथाएँ कम शब्दों में लिखी जाती हैं, पर पाठकों को एक पूरी कहानी का अनुभव कराती हैं। कथानक अत्यंत प्रभावशाली होता है। संक्षिप्त होने पर भी इन कथाओं में गहरी भावना और सशक्त संदेश निहित होता है। लघु कथाओं में अनावश्यक विवरण नहीं होता यह सीधे विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं। कम समय में ही एक अच्छी और सशक्त कहानी पढ़ने का आभास दिलाती हैं।

लघु कथाएँ, जो दलित संदर्भ में लिखी गई हैं, दलित समाज की पीड़ा, संघर्ष, अपमान और उनके अनुभवों को संक्षिप्त और प्रभावोत्पादक रूप से प्रस्तुत करती हैं। दलित लघु कथाएँ उन लोगों की व्यथा कथाएँ हैं जिन लोगों को समाज निम्न स्तरीय मानता है। ये कहानिया दलितों के प्रति होने वाले भेदभाव, अन्याय और शोषण को वास्तविकता के साथ प्रस्तुत करती हैं। दलित समुदाय के संघर्ष और उनके द्वारा किए गए विद्रोह को भी ये कहानिया उजागर करती हैं। जातिगत भेदभाव के विरुद्ध समाज के परिवर्तन और सुधार के लिए ये कहानिया पाठकों को प्रेरित करती हैं।

राजस्थान के भैंसली गांव में जन्मे डॉ रामकुमार घोटड़, राजस्थान सरकार से सेवानिवृत्त चिकित्सक हैं। इनके द्वारा 800 से भी अधिक लघु कथाएँ रची गई हैं। इनकी एक लघु कथा 'अछूतोद्धार' में कलुआ भंगी पंडित जी से ऐसी बात कह देता है, जिसे सुनकर पंडित जी अचंभित और आवक रह जाते हैं। भंगी समाज के कलेक्टर के मन्दिर में प्रवेश करने पर पंडित उनके सामने भगवान की महिमा बढ़-चढ़कर तो सुनाते हैं पर उनके वहा से जाते ही मन्दिर और मूर्ति को दूध से धोकर गंगाजल का छिड़काव करते हैं। जब कलुआ भंगी पंडित जी से इस बारे में पूछता है तो पंडित कहते हैं कि 'अपवित्र हो जाने पर पवित्र किया जाना धर्म ही नहीं पुजारी होने के नाते मेरा फर्ज भी है'। यह सुनकर कलुआ पंडित जी से कहता है 'सदियों से यह शूद्र वर्ग अछूत आत्मा लिए घूम रहा है, आप इसे गंगाजल के छींटें देकर पवित्र कर दो..... जन्म-जन्मांतर यह समाज आपका ऋणी रहेगा।' अत्यंत मार्मिक और हृदय स्पर्शी कहानी है। कलुआ की बातें मानवता को झकझोर ने वाली है।

'शाश्वत- प्रश्न' नमक लघु कथा में घोटड जी एक भांगिन से अपने आप को महान ज्योतिषज्ञ समझने वाले पंडित जो एक पीपल के गट्टे पर अपना आसन लगाकर पत्रा खोलकर पन्ने पलट रहे होते हैं, से सवाल करवाते हैं कि 'महाराज आप पंडित कैसे बने और मैं भांगिन कैसे हुई?'साधारण सा सवाल समझ कर पुरखों का इतिहास बताने वाले पंडित से फिर भांगिन पूछती है-

' पत्रे में ढूंढो शायद आपको कहीं मिल जाए।'

सच ही तो है इस प्रश्न का उत्तर आज तक कोई नहीं दे सका। 'वर्षों पर वर्ष गुजर गए पत्रे पर पत्र बदलते रहे लेकिन भांगिन का शाश्वत प्रश्न, आज भी मानवता के सामने मुंह फैलाए खड़ा है....।'

हरियाणा के सेवानिवृत रेजिडेंट ऑडिट ऑफीसर राजकुमार निजात जी ने कुल 1000 लघु कथाएं लिखी हैं। उनके द्वारा लिखित 'दिखावा' नमक लघु कथा में दलितों के द्वारा अपने घर का काम कराते हुए भी अपने घर आए मेहमानों के सामने दिखावा करने वाले पंडित का चित्रण किया गया है। घर घर से कूड़ा बटोरने वाले सफाई मजदूर नंदू ने पंडित जी के घर का दरवाजा खटखटाया और उन्हें कूड़ा बाहर लाकर डालने की बात कही। भीतर से पंडिताइन बोली 'अरे खुद उठा ले आकर, आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है।'

नंदू ने कहा 'नहीं माता! अपना कूड़ा खुद लाओ और आकर रिक्षा में डाल दो ,जल्दी। उस रोज मैं कूड़ा उठाने खुद ही भीतर आ गया था तो पंडित जी उबल पड़े थे मुझ पर। मेरे जाने के बाद उन्होंने बाहरी फर्श की सफाई फिर से की थी।'

तभी मकान के भीतर से नंदू के कुनबे की गीतू बाई पंडिताइन के घर की रसोई से काम करके बाहर निकली।

पंडित जी के दिखावे की पोल पूरी तरह खुल गई थी।

कैसे विचित्र लोग हैं समाज में खुद तो निम्न वर्ण के माने जाने वालों से काम करवाते हैं, लेकिन मेहमानों के सामने इन्हें नीचा दिखाकर अपने ऊंचा होने का दिखावा करते हैं। न जाने कब बदलेगी इन जैसों की मानसिकता।

निजात जी की 'गंगा स्नान' नामक कहानी में नेताजी दलितों के घर में भोजन करने जाते हैं तो पत्रकार महोदय पूछते हैं खाना कैसा था ? नेता जी का जवाब था की बहुत बढ़िया, मेरी पसंद का था। पत्रकार के यह पूछने पर कि अगला कार्यक्रम क्या है, तो नेता कहते हैं कि अब गंगा मैया के पास जाएंगे, डुबकी लगाएंगे, पूजन करेंगे, वहां आधारशिला भी रखेंगे।

यह पूछने पर की दलित के यहां खाना खाकर गंगा स्नान क्यों, तो नेता का कहना था कि यह पहले से ही तय था। मीडिया में यह खबर सुर्खियों में थी कि "दलित के यहां भोजन के पश्चात नेताजी का गंगा स्नान।"

'सब्जी की जात' नामक कहानी में सब्जी वाला शहर से सब्जी खरीदता और गांव में बेच कर आ जाता। जिससे उसका गुजर बसर हो जाता। एक दिन किसी ग्राहक ने पूछा कि तुम किस जात के हो तो वहां ठीक गया फिर बोला की भंगी हूं पर सब्जी बेचता हूं।

गांव के अग्र वर्ण के लोग सब्जी खरीदना छोड़ देते हैं, तो उसे आधी से ज्यादा सब्जी लेकर लौटना पड़ता। पास में ही एक और गांव था, तो वह वहां जाकर सब्जी बेचने लगा ज किसी ग्राहक ने पूछ लिया कि तुम माली लगते हो इस बात पर वह यह कहता है कि यह मेरे चाचा के खेत की हैं.... ताजा एकदम।

शाम तक उसकी सारी सब्जी बिक चुकी थीं।

लेखक कहते हैं कि शाम तक लोगों ने सारे का सारा "झूठ" खरीद लिया था।

लघु कथाकार श्रीमती मालती बसंत, मध्य प्रदेश राज्य के ओपन स्कूल से सहायक संचालक के रूप में सेवानिवृत हुई हैं । इन्होंने लगभग 250 लघु कथाएँ लिखी हैं। 'व्यवहार' नामक कहानी में सुषमा जी का क्लब में एक महिला से परिचय होता है, और उस महिला के आत्मीय व्यवहार से सुषमा बड़ी प्रभावित होती हैं। दूसरी ही मुलाकात में सुषमा अपनी बेटी के रिश्ते के लिए एक लड़के की जानकारी प्राप्त करने के लिए उस महिला से कहती हैं क्योंकि उस लड़के का ऑफिस महिला के घर के पास था। तीसरी बार जब हम महिला सुषमा जी से मिली तो उसका व्यवहार बदला बदला हुआ पाया फिर भी हिम्मत करके उन्होंने उसे लड़के के बारे में पूछा तो वह कहने लगी

'हा वहा तो कोई अच्छा लड़का दिखाई दिया नहीं, आपने जो नाम लिखवाया था हा उस नाम का एक बाबू तो है, पर वह तो दलित है।' मुह बिचका कर वे वहा से चली गई।

जाति से परिचित न होने तक जो आत्मीय व्यवहार उस महिला का था, जाति का पता चलते ही बदल गया। शिक्षित वर्ग में भी इस प्रकार का व्यवहार अत्यंत शोचनीय है।

'गुण -अवगुण' नमक लघु कथा में एक ब्राह्मण की बेटी का एक दलित स्कूल मास्टर से विवाह हो जाता है। यह बात सुनकर ब्राह्मण समाज दलित युवक के घर पहुंच जाते हैं। घर के सामने शोर सुनकर युवती बाहर निकलती है और कहती है-

'उस समय तुम सब लोग कहा थे जब मेरे पिता समाज के लड़के को दिखाने मेरे घर लाते लेकिन मेरा सांवला रंग रूप देखकर ब्राह्मण लड़के बिदक जाते। किसी ने मेरे गुण, स्वभाव, उच्च शिक्षा पर गौर नहीं किया, और कहते गरीब ब्राह्मण और ऊपर से काला कलूटा रूप। जबकि इन्होंने मेरे रूप रंग को ना देख कर मेरे गुण स्वभाव, मेरी उच्च शिक्षा को जानकर मुझे विवाह कर लिया तो कौन सा गुनाह कर दिया। गुनाह तो तब होता जब मैं आजीवन कुंवारी रहती और तुम ही लोग मुझे कोसते कि मैं मां-बाप के लिए बोझ बनी बैठी हू।'

समाज आखिर समाज है। मौका परस्त है। किसी का भला होते हुए कभी देख नहीं सकता यहा पर भी उस युवती के साथ वही हो रहा था पर उस ने धैर्य के साथ उस समाज का सामना किया, और उनका मुह बंद करवाया।

'दलितों में दलित' यह कहानी है तो बड़ी अनोखी। रागिनी अपनी कार रोक कर दलित बस्ती के एक घर का दरवाजा खटखटाती हैं। एक महिला बाहर आती हैं। उनसे रागिनी पूछती हैं कि यहा किस जाति के लोग रहते हैं, तब महिला कहती हैं ऐसे बोलो ना कि आपको पानी पीना है सवर्णों की बस्ती आगे है। रागिनी के यह कहने पर कि वह अपने बेटे के लिए अच्छा रिश्ता ढूंढने निकली थी और वह भी दलित है। महिला आश्चर्यचकित होगयी और फिर एक प्रश्न पूछा कि 'तुम कौन सी दलित हो?' 'ऊंचे दलित या नीचे दलित,?' अग्र वर्ण के लोगों के शोषण से शायद दलितों में भी ऊंच नीच की भावना पनपी, या मनुष्यों की मानसिकता ही कुछ ऐसी है, इतिहास ही बता सकता है।

लघु कथा हिंदी साहित्य में अब एक नई और लोकप्रिय विधा बन चुकी है। ये कहानिया न केवल मनोरंजक होती हैं, बल्कि पाठकों को जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं और अनुभवों से जुड़ी बड़ी सच्चाइया भी बताती हैं । दलित लघु कथाएँ- ये केवल कहानी नहीं है, बल्कि समाज के उस वर्ग की सच्चाई है जो लंबे समय से

अन्याय और शोषण का शिकार रहा है। डॉ रामकुमार घोटड़ , राजकुमार निजात मालती बसंत , डॉ पूरन सिंह आदि साहित्यकार अपनी लघु कथाओं के माध्यम से दलित जीवन का तस्वीर पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। दलित कथाएँ न केवल साहित्य में नई दृष्टि और अनुभव जोड़ती है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और सुधार की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लघु कथाकार कम शब्दों में गहरी बातें कहकर पाठकों को सोचने और समझने के लिए एक नया दृष्टिकोण प्रदान करते हैं । समाज में व्याप्त असमानताओं के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

संदर्भ

1. लघुकथा - सप्तक चार (दलित संदर्भ) - डॉ रामकुमार घोटड़
2. http://likhara.blogspot.com
3. http://oppalmedia.blogspot.com
4. https://swayamsiddha.com

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

समकालीन हिंदी ग़ज़लों में स्त्री विमर्श

-प्रा.डॉ.एफ.मस्तान शाह

सहयोगी प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष,

एन.एम.डी.कॉलेज, गोंदिया

ग़ज़ल का स्वरूप:

भारतीय साहित्य में 'गज़ल' की सुदीर्घ, विस्तृत एवं समुन्नत परंपरा विद्यमान है । उर्दू में इसे फारसी की देन के रूप में स्वीकृत किया गया है । प्रेम और श्रृंगारिक भावों के आधिक्य के कारण जनमानस का गजल की ओर आकर्षित होना सहज और स्वाभाविक है ।

हिंदी में ग़ज़ल का प्रचलन आदिकालीन साहित्य से रहा है । आधुनिक काल में साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिंदी ग़ज़ल विधा का प्रचार-प्रसार भी बहुत व्यापक धरातल पर हुआ है । हिंदी में सर्वप्रथम ग़ज़ल लिखने का प्रयास हज़रत अमीर खुसरों ने किया है । हज़रत अमीर खुसरों हिंदी के प्रथम ग़ज़लकार माने जाते है । ग़ज़ल फारसी-साहित्य से उर्दू साहित्य में आयी । बाद में हिंदी साहित्य ने इसे अपनाया है ।

इस प्रकार हज़रत अमीर खुसरों से प्रारंभ होकर ग़ज़ल की धारा हिंदी साहित्य में आज तक नये-नये मोड़ लेकर प्रवाहित होती रही है । इन्हीं परिवर्तनों का यह परिणाम है कि, आज ग़ज़ल एक समृध्द एवं सशक्त काव्य विधा के रूप में पहचानी जा रही है ।

हज़रत अमीर खुसरों से लेकर स्वतंत्रतापूर्वकाल तक अनेक कवियों ने ग़ज़लें लिखी है लेकिन आज समकालीन हिंदी ग़ज़लों में वास्तविकता यथार्थता अधिक मात्रा में नजर आती है । समकालीन हिंदी ग़ज़लों ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है । वह 'प्रेम-जाल' को तोड़कर बाहर आ गई है । उसने समाज की वास्तविकता से अपना संबंध स्थापित कर लिया है । हिंदी ग़ज़लकारों ने 'ग़ज़ल' को 'हुस्न-इश्क' से हटाकर समाज की सच्चाई के साथ उसका नाता जोड़ दिया है ।

हिंदी के प्रख्यात ग़ज़लकार गोपालदास 'नीरज' ग़ज़ल के बदलते रूप व रोल और उसकी इश्किया संकीर्णता से निकलकर व्यापक बनने के संबंध में लिखते है कि, "ग़ज़ल जोकि कभी ज़ुल्फों के पेचोखम और घुंघरूओं की थिरकन में बहुत लंबे अरसे तक कैद रही वो अब उनसे पूरी तरह मुक्त होकर भीड़ भरे चौराहों पर आकर खड़ी हो गई है । इन चौराहों पर राजनीति, स्वार्थपरता, संकीर्णता, भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, सांप्रदायिकता, धर्मांधता, जातीयता, अराजकता, उग्रवाद और आतंकवाद आदि को देखती और सुनती है । आज की ग़ज़ल उन सबको बड़े ही मार्मिक शब्दों में व्यक्त कर रही है । शिक्षित, अशिक्षित और सामान्यजन के पास पहुंचने के लिए भाषा को जो संस्कार और गेयता का जो कौशल वांछनीय है वो सब आज की ग़ज़ल हमें दे रही है । सच बात तो यह है कि हिंदी-उर्दू के बीच जो खाई वर्षों से तथाकथित अदीबों और नासमझ आलोचकों द्वारा खोदी जाती रही है । आज की ग़ज़ल उस खाई को समतल करने के लिए भाषा का एक ऐसा स्वरूप गढ़ रही है जो हिंदी और उर्दू से अलग प्रेम की भाषा कही जा सकती है ।"1

हिंदी ग़ज़लकार डॉ. कुंअर बेचैन ग़ज़ल के संबंध में कहते हैं कि, "ग़ज़ल फूल की खुशबू की तरह पाँखुरी में रहकर भी अपनी पाँखुरियों की सरहद के पार जाने का नाम है । ग़ज़ल भाषा के द्वारा की गई मानवता की पहरेदारी है । ग़ज़ल किसी तथ्य को भाव के द्वारा समझने का प्रयास है, मनुष्य के अपराजित महात्म्य का अभिषेक है, अनुभव की पगडंडी और विचारों के चौरास्तों पर की गई शब्द की पदयात्रा है । ग़ज़ल उत्तेजना नहीं वरन् एक सार्थक विचार है । ग़ज़ल हृदय की भूमि पर लगी वह खरौंच है जिसमें प्रेम का बीज़ पनपता है -- ग़ज़ल हारिल पक्षी की तरह अपने इष्ट को टहनी मानकर उसे कसकर पकड़े रहने का प्रयास नहीं, वरन् उससे भी आगे पंखों को बांधे हुए एक जगह बैठे हुए अनंत आकाश में उड़ते रहने की कला है ।"2

हिंदी ग़ज़लकार ज्ञानप्रकाश विवेक ग़ज़ल के संबंध में कहते हैं कि, "ग़ज़ल ज्वालामुखी की ऑख से टपके ऑसुओं का अनुवाद है । ग़ज़ल फूल की पँखुड़ी पर धूप के हस्ताक्षर करती महसूस होती है । ग़ज़ल जिंदगी का आईना है । आदमी की शख्सियत का अक्स है । ग़ज़ल बदशक्ल पत्थर से तराशा गया किसी संगतराश का सपना है । ग़ज़ल महानगरीय अजनबीपन के द्वारा पर पहचान की एक दस्तक है । खो गये आदमी को ढँढती होई रोशनी की लकीर है । इस दौर की ग़ज़ल एक खामोश विस्फोट है । "3

डॉ.राजकुमार निज़ात ने लिखा है कि, "यदि ग़ज़ल पायल और पैर का अंदाज है तो यह जुल्म और अन्याय करने वालों के लिए लफ्ज़ों का एक हथियार भी है जो चोंट करती है तो बारूद का-सा अहसा दे जाती है । सत्ता के गलियारों में वह बंदूक की गोली की तरह प्रवेश करती है।"4

इस तरह समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों में दुष्यंतकुमार, चंद्रसेन विराट, कुंअर बेचैन, गोपालदास सक्सेना 'नीरज,' हनुमंत नायडू, शेरजंग 'गगर्', ज्ञानप्रकाश विवेक, पुरूषोत्तम 'प्रतीक', राजेश रेड्डी, रामदरश मिश्र, बेकल 'उत्साही', रामकुमार 'कृषक', भवानी शंकर, अवध नारायण मुद्गल, डॉ.उर्मिलेश, जहीर कुरेशी, चाँद 'शेरी', अदम गोडवी, विजय किशोर मानव, गिरीराजशरण अग्रवाल, हस्तिमल 'हस्ति', लक्ष्मण दुबे आदि आते है । समकालीन हिंदी गजलों में समाज की अनेक समस्याओं का चित्रण किया गया है । उसी तरह समकालीन हिंदी ग़ज़लों में स्त्रियों पर बढ़ते अत्याचार का यथार्थ चित्रण भी दिखाई देता है ।

समकालीन हिंदी ग़ज़ल आज समय के स्वर में स्वर मिला रही है तो स्वाभाविक है कि स्त्री-विमर्श से उसका दामन खाली नहीं हो सकता । उल्लेखनीय है कि ग़ज़ल ही एक ऐसी विधा है जिसकी नींव में स्त्री से आत्मीय संबंधों के तत्व विद्यमान है । ग़ज़ल परंपरा का संपूर्ण कलेवर सदा से स्त्रीयोचित सौंदर्य आकांक्षी रहा है । जिस प्रकार स्त्री को कभी दासी और उपेक्षिता तो कभी देवी का रूप दिया गया है । ठीक वैसे ही ग़ज़ल को कभी अश्लील और वासनात्मक अभिव्यक्ति बनाकर समाज की उपेक्षित विधा करार दिया गया, तो कभी उसे पारलौकिक तत्वों के आधिक्य से मानवेतर लोक की विधा घोषित कर दिया गया है । इक्कीसवी सदी की नारी के अनुरूप समकालीन हिंदी ग़ज़ल का मिज़ाज और तेवर बदला है । जैसे आज की नारी अपने मनुष्य रूप को पाने के लिए संघर्षरत है, ठीक वैसे ही आज की हिंदी ग़ज़ल सामान्य मनुष्य के जीवन से जुड़ने के लिए प्रयत्नशील है । अतः समकालीन हिंदी ग़ज़लों में स्त्री विमर्श निम्नलिखित स्वरूप में हम देख सकते है ।

स्त्री को एक वस्तु समझकर पुरूष प्रधान समाज ने किस हद तक अपने ईशारों पर नचाया है इस विडंबना का तीखे स्वर में हिंदी ग़ज़लों ने विरोध किया है । अपनी ग़ज़ल के एक शेर द्वारा ज़हीर कुरैशी ने पुरूष प्रधान समाज की वास्तविकता का चित्रण किया है -

"महत्वाकांक्षी पति के ईशारों पर,

गई थी कल भी वो साहब के बिस्तर तक ।"5

एक तो स्त्री और उसके उपर यदि वह निम्न जाति की है या ग़रीबी का जीवन जी रही है तो समाज उस पर अपना अधिकार समझकर बार-बार उसकी अस्मिता को तार-तार करता है । भूख और तंगी उसे बिकने तक को मजबूर करते है । हिंदी ग़ज़लकार अदम गोंडवी समाज की विद्रुपता का यथार्थ चित्रण करते हुए कहते है-

"रोटी कितनी महंगी है ये औरत बतायेगी,

जिसने ज़िस्म गिरवी रख के ये क़ीमत चुकाई है ।"6

भारतीय संस्कृति में जहाँ कभी नारियों की पूजा होती थी, उसी देश में नारी शोषण एवं नारी अत्याचार एक नये रूप में कुछ अधिक बढ़ गया है । नारी को भोगलिप्सा का साधन माना गया है । वर्तमान भौतिकवादी एवं भोगवादी संस्कृति में नारी अत्याचार और भी अधिक प्रमाण में बढ़ गये है । कहीं किसी युवती की किसी बूढे से शादी करके, कहीं बलात्कार करके कहीं दहेज के लिए जीवित जलाकर आदि कई तरीकों से उसका शोषण किया जा रहा है । वास्तव में आज नारी की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी है । समाज में नारी पर किये जा रहे अत्याचार का वर्णन जहीर कुरैशी ने अपनी एक ग़ज़ल द्वारा बड़े ही व्यंग्यपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है -

"क्या कहें अखबारवालों से व्यथा औरत
यौन शोषण की युगों लंबी कथा औरत
अपहरण कर गये 'रावण' कभी बिल्ला
कल 'सिया', तो आज 'गीता चोपड़ा' औरत ।
आज भी मामा या सौतेले पिता के हाथ
बेच दी जाती है 'बूढ़े' को युवा औरत
एक कवि ही था, कहा जिसने उसे 'श्रध्दा'
आम मर्दों ने सदा ली अन्यथा औरत ।
कल सती होकर चली थी, आज पति के हाथ
बन गई जीवित जलाने की 'प्रथा' औरत ।"7

आज देश में हर रोज़ कई अबला नारीयों को दहेज के कारण जलाया जाता है, लेकिन अपराधी सबूत के अभाव में बरी हो जाते है । हमारी न्याय-प्रणाली भ्रष्ट होने से नारीयों पर अत्याचार बढ़ गये है । उन पर दिन-दहाड़े खुली सड़क पर बलात्कार किये जाते है और बलात्कारी बाईज्ज़त रिहा हो जाते है । देश की इसी कमजोर न्यायप्रणाली पर चाँद 'शेरी' ने करारा व्यंग्य किया है ।

"जलती रहेंगी बेटियाँ यूही दहेज पर
कानून में सबूत का जब तक रिवाज़ है

शायद इसी का नाम तरक्की है दोस्तों

नंगी सड़क पे हर बहू-बेटी की लाज है ।"8

आज समाज में पुत्रियों के बारे में एक अलग प्रकार की मानसिकता बन गयी है । समाज में आज बेटियों का पैदा होना एक अभिशाप माना जाता है । इसी कारण आज समाज में चिकित्सा-शास्त्र के जरिये लिंग-निर्धारण कर कन्या को जन्म लेने से पहले ही मौत के घाट उतार दिया जाता है । समाज की इस लिंग-निर्धारण की समस्या पर जहीर कुरैशी ने बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य किया है । वे अपनी ग़ज़ल के शेर में कहते है-

"लिंग निर्धारण समस्या हो गई

कोख में ही कत्ल कन्या हो गई ।"9

आज भारत देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुए 75 वर्ष से ज्यादा समय हो चुका है, लेकिन हमारी मानसिकता आज तक नहीं बदली । आज भी समाज में सती प्रथा जैसी समस्या नज़र आती है । अपने देश में कई राज्यों में आज भी पति की मृत्यु के बाद पत्नी को भी पति के साथ जलकर सती होना पड़ता है । समाज की इसी नारी शोषण की समस्या पर कमलकिशोर 'श्रमिक' ने बड़ा ही ज़बर्दस्त व्यंग्यात्मक प्रहार किया है-

"वह सती बनने की खातिर किस तरह से जल गई

हम सदन में आज तक कह नहीं पाये ।"10

नारी शोषण का एक पहलू अनमेल विवाह की कुप्रथा भी है । प्राचीन काल में इस प्रकार के विवाह होते थे । वर्तमान काल में भी दरिद्रता और गरीबी के कारण कितनी ही युवतियों को अधेड़ उम्र के व्यक्तियों के साथ विवाह करने के लिए मजबूर किया जाता है । जीवन के इस महत्वपूर्ण निर्णय में उनकी इच्छा और आकांक्षा को कोई महत्व नहीं रहा है । समाज की इसी कुप्रथा पर जहीर कुरैशी ने व्यंग्यात्मक प्रहार किया है-

"हो चाहे बीस की लड़की को साठ साल का वर

मगर, वे रिश्ता बड़े घर के साथ जोड़ेगे ।"11

आज समाज में पुरूष वर्ग नारी को अपने पैर की जूती मानता है । नारी के पास जब तक सौंदर्य तथा जवानी रहती है तब तक उसे भोगता है । जैसे ही नारी का सौंदर्य कम हुआ तो संबंधविच्छेद कर उसे घर से बाहर निकाल दिया जाता है । दूसरी स्त्री के साथ संबंध स्थापित कर लिया जाता है । नारी के प्रति पुरूष वर्ग की इसी मानसिकता पर अदम गोंडवीजी ने बड़ा ही करारा व्यंग्य किया है-

"औरत तुम्हारे पाँव की जूती की तरह है

जब बोरियत महसूस हो घर से निकाल दो ।"12

आज हमारा समाज बहुत ही बुजदिल, संवेदनहीन तथा डरपोक बन गया है । हमारी ऑखों के सामने हमारी माँ-बहनों को गुंडे उठाकर ले जाते हैं, उनकी इज्जत भरे चौराहे पर नीलाम करते हैं और हम यह सारा दृश्य देखते रहते है । समाज की इसी विंगतियों पर आचार्य भगवत दुबेजी ने बड़ ही करारा व्यंग्य किया है-

"सामने गुंडे उठाकर ले गये लड़की मगर

उनके जाते, स्वर सुनाई, 'हुआ क्या' देने लगा ।"13

समाज में जन्म से लेकर मृत्यु तक औरत को पुरूष के ईशारे पर जीवन जीना पड़ता है । आज पुरूष वर्ग स्त्री को अपना गुलाम समझ बैठा है । पुत्री जन्म से लेकर शादी तक पिता के साथ तथा शादी के बाद पति के फिर बाद में औलाद के भरोसे जीवन जीती है । यह हमारे समाज की प्राचीन कुप्रथा है । नारी-शोषण की इसी समस्या पर मासूम गाज़ियाबादी ने बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य किया है-

"कभी बाबुल, कभी शौहर, कभी औलाद के यारब

ये औरत उम्र भर क्यूं मर्द के अधीन होती है ।"14

आज समाज मे गरीबी के कारण कई लड़कियों की शादी नहीं हो पाती । वह अपनी शादी के स्वप्न देखती है लेकिन दहेज न दे पाने की वजह से उनका विवाह रूक जाता है । समाज में व्याप्त इस दहेज प्रथा पर नित्यानंद 'तुषार' ने बड़ा ही गहरा व्यंग्यात्मक प्रहार किया है-

"स्वप्न ऑखों में लिये मेहंदी रचाती रह गयी

दहेज का दानव फिर उसका वर उठाकर ले गया ।"15

आज समाज में विवाह के बहाने वर पक्ष वाले दहेज की आड़ में दुल्हन का घर लूट लेते है और शादी के कुछ दिनों बाद दुल्हन को जला देते है । समाज की इसी विद्रुपता पर रसूल अहमद सागर ने व्यंग्यात्मक प्रहार किया है-

"लूट लो शादी के पहले लड़की वाले का मकान

और फिर दुल्हन जलाओ, देश अब आज़ाद है ।"16

आज समाज में यौन शोषण बढ़ गया है । आये दिन कहीं न कहीं नारियों पर यौन शोषण के रूप मे अत्याचार ढाये जाते है । आज पुरूष नारी को वासनातृप्ति का साधन मानता है । पुरूष वर्ग की इसी मानसिकता पर हिंदी गज़लकार ज़हीर कुरैशी ने बड़ा ही करारा व्यंग्य किया है-

"अंतरंग बातों में, औरत ने औरत से यही कहा

पुरूष-भेड़िये उस तक अपनी भूख मिटाने आते है ।"17

आज समाज में मुहमॉगा दहेज न मिलने पर दुल्हन को जलाया जाता है । दहेज की खातिर नारियों को जलाया गया तो इस दुनिया में महिलाओं की संख्या कम हो जायेगी और हमें पुत्रियों के जन्म के लिए भगवान से दुआ करनी पडेगी । इसी बात की चिंता आचार्य भगवत दुबेजी ने जतायी है-

"पुत्रियों के जन्म की खातिर दुआ करनी पड़ेगी

इस दहेजी आग में जब लड़कियाँ दम तोड़ देगी ।"18

गॉव या शहर में जब कभी सांप्रदायिक आग भड़कती है तो उस फसाद में नारियों पर अत्याचार ढाये जाते है। उन्हें अपनी वासना का शिकार बनाया जाता है । नारी अत्याचार की इस समस्या पर जहीर कुरैशी ने करारा व्यंग्य किया है-

"तो सब से पहले हुआ औरतों का चीरहरण

शहर या गॉव में जब भी फसाद होता है ।"19

आज के युग में मनुष्य इतना लोभी हो चुका है कि वह अखबारों तक में अपने दहेज के दाम का विज्ञापन देता है । समाज की दहेज मॉगने की नयी समस्या पर आचार्य भगवत दुबे ने बहुत ही गहरा व्यंग्यात्मक प्रहार किया है-

"विज्ञापन पढ़ लिये सभी अखबारों के

भाव चढ़े है, दुल्हों के बाज़ारों के

पेट बकासुर सुरसा जैसे गाल हुए

इन दहेज लोभी दानव, हत्यारों के।"20

जहॉ कहीं भी नारी अकेली मिलती है तो पुरूष वर्ग उसे वासनात्मक दृष्टि से देखते हैं और जंगली जानवरों की तरह उससे पेश आते है । इसी बात पर जहीर कुरैशी ने व्यंग्य कसा है-

"एक औरत अकेली मिली जिस जगह

मर्द होने लगे जंगली जानवर ।"21

नारी घर की लक्ष्मी होती है । स्त्री से घर की रौनक बढ़ती है । उसे देवी का रूप कहा गया है । कभी वह मॉ के रूप में आती है तो कभी बेटी के रूप में, तो कभी बहन के तो कभी पत्नी के रूप में । मगर आये दिन महिलाओं पर अत्याचार बढ़ गये है । कभी यौन शोषण के जरिये तो कभी बलात्कार के माध्यम से तो कभी दहेज के कारण उसे जलाकर कई तरीके से उस पर अत्याचार ढाये जाते है । अगर नारी का अपमान बढ़ता रहा तथा अत्याचार अधिक बढ़ते रहे तो एक दिन हम सब की इज्जत नीलाम हो जायेगी । इसी बात की चिंता लक्ष्मण दुबे ने व्यक्त की है ।

"औरत की जिल्लत अगर आम होगी

तो इज्ज़त सभी की नीलाम होगी ।"22

इस तरह समकालीन हिंदी ग़ज़लों में स्त्री विमर्श के विविध पहलुओं को बड़े ही मार्मिक ढंग से उजागर किया गया है ।

निष्कर्ष:

हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समकालीन हिंदी ग़ज़लों में स्त्री विमर्श के यथार्थ एवं वास्तविक पहलुओं को उजागर किया है । उन्होंने स्त्री जीवन की विविध समस्याओं को एवं उन पर बढ़ते

अत्याचारों को जनसामान्य तक पहुंचाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है । समाज में व्याप्त स्त्री संबंधी विविध कुप्रथाओं का भी चित्रण समकालीन ग़ज़लों में परिलक्षित हुआ है । समकालीन हिंदी ग़ज़लों में नारी शोषण एवं अत्याचार का चित्रण भी हुआ है ।

संदर्भ:

1. ग़ज़लनामा, (भाग1) संपा. डॉ.राज निगम, पृ.206
2. वही
3. धूप के हस्ताक्षर, ज्ञानप्रकाश विवेक, पृ.7
4. हिंदी साहित्य, पच्चास वर्ष, सं.डॉ.केशव फालके, पृ.38
5. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरैशी, पृ.21
6. धरती की सतह पर, अदम गोंडवी, पृ.26
7. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरैशी, पृ.68
8. जर्द पत्ते हरे हो गये, चाँद शेरी, पृ.33
9. भीड़ में सब से अलग, ज़हीर कुरैशी, पृ.41
10. श्रमिक की गज़लें, डॉ.प्रभा दीक्षित, पृ.59
11. भीड़ में सब से अलग, ज़हीर कुरैशी, पृ.95
12. धरती की सतह पर, अदम गोंडवी, पृ.17
13. शिकन, आचार्य भगवत दुबे, पृ.70
14. देखा कभी आपने, मासूम गाज़ियाबादी, पृ.15
15. गज़ल से गज़ल तक, संपा. अशोक अंजुम, पृ.68
16. संवेदनाओं के क्षितिज, रसूल अहमद सागर, पृ.66
17. समंदर ब्याहने आया नहीं है, ज़हीर कुरैशी, पृ.87
18. शिकन, आचार्य भगवत दुबे, पृ.112
19. भीड़ में सब से अलग, ज़हीर कुरैशी, पृ.22
20. शिकन, आचार्य भगवत दुबे, पृ.39
21. चाँदनी का दुःख, ज़हीर कुरैशी, पृ.73
22. जो किनारा था कभी, लक्ष्मण दुबे, पृ.36

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संवैधानिक चेतना से विमर्श-साहित्य तक: समकालीन हिंदी साहित्य की नई दिशा

डॉ. विजयप्रकाश ओमप्रकाश शर्मा

हिंदी विभाग, पूज्य साने गुरूजी विद्या प्रसारक मंडल का कला
विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शहादा, जिला, नंदुरबार (महाराष्ट्र)

सारांश:

संवैधानिक भारत के निर्माण के साथ ही हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक एवं विमर्श-केंद्री दृष्टिकोण का उदय हुआ। भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व और सामाजिक न्याय जैसे मूल्यों को वैधानिक रूप दिया, जिसका प्रभाव साहित्यिक अभिव्यक्तियों पर स्पष्ट रूप से पड़ा। दलित, आदिवासी, स्त्री, पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यक और हाशिए के समुदायों की चेतना हिंदी साहित्य में नए विमर्शों के रूप में उभरकर सामने आई। यह साहित्य केवल सौंदर्य या मनोरंजन तक सीमित न रहकर सामाजिक यथार्थ, शोषण, असमानता और अधिकारों की आवाज़ बना। प्रेमचंद से लेकर समकालीन लेखकों तक, हिंदी साहित्य ने लोकतांत्रिक मूल्यों को आत्मसात करते हुए प्रतिरोध, प्रश्न और पुनर्रचना की भूमिका निभाई। अस्मिता-विमर्श ने साहित्य को सत्ता-केंद्रित सोच से बाहर निकालकर जन-केंद्रित बनाया। इस प्रकार संवैधानिक चेतना से प्रेरित हिंदी साहित्य सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बन गया।

मुख्य शब्द: संविधान, अस्मिता, विमर्श, सामाजिक न्याय, दलित साहित्य, स्त्री विमर्श, लोकतंत्र, हाशियाकरण, समानता एवं समकालीन हिंदी साहित्य।

प्रस्तावना: स्वतंत्र भारत का संविधान केवल शासन व्यवस्था का दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का घोषणापत्र है। इसी संवैधानिक चेतना ने हिंदी साहित्य को नई दृष्टि, नई भाषा और नए सरोकार दिए। अस्मितामूलक एवं विमर्शकेंद्री हिंदी साहित्य सामाजिक यथार्थ को केंद्र में रखकर शोषित-वंचित वर्गों की आवाज़ को अभिव्यक्त करता है। यह साहित्य लोकतांत्रिक मूल्यों का साहित्यिक प्रतिरूप है।

दलित साहित्य:

दलित साहित्य संवैधानिक भारत में उभरे सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का सबसे सशक्त और प्रामाणिक उदाहरण है। यह साहित्य केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त समानता, स्वतंत्रता और गरिमा के अधिकारों ने दलित समाज को आत्मबोध और अभिव्यक्ति का वैचारिक आधार दिया, जिसका सृजनात्मक रूप दलित साहित्य में दिखाई देता है। इस साहित्य ने परंपरागत अभिजन दृष्टिकोण को चुनौती देकर शोषित-वंचित वर्ग के जीवनानुभवों को केंद्र में रखा। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' दलित साहित्य की प्रतिनिधि रचना मानी जाती है। यह कृति दलित जीवन में व्याप्त अपमान, भेदभाव, अभाव और संघर्ष का अत्यंत यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करती है। " 'जूठन' केवल व्यक्तिगत पीड़ा की कथा नहीं है, बल्कि एक पूरी सामाजिक संरचना पर आरोपपत्र है, जहाँ जाति के आधार पर मनुष्य की गरिमा छीनी जाती है। वाल्मीकि ने स्कूल, कार्यस्थल और समाज में झेले गए अपमानजनक अनुभवों को बेबाकी से प्रस्तुत किया है।"[1] यह आत्मकथा करुणा नहीं जगाती, बल्कि पाठक में असहज प्रश्न खड़े करती है कि, स्वतंत्र और संवैधानिक भारत में भी दलित को मनुष्य क्यों नहीं माना गया?

इसी परंपरा में शरणकुमार लिंबाले का लेखन दलित अस्मिता के तीखे प्रतिरोध का स्वर है। "उनकी आत्मकथा 'अक्करमाशी' जो हिंदी में भी चर्चित है, दलित जीवन की विडंबनाओं को न केवल उजागर करती है, बल्कि जाति व्यवस्था की अमानवीयता पर सैद्धांतिक प्रहार भी करती है। लिंबाले के अनुसार दलित साहित्य वह है, जो दलितों द्वारा, दलितों के लिए और दलित अनुभवों से जन्मा हो। इस दृष्टि से दलित साहित्य सहानुभूति का नहीं, अनुभव का साहित्य है।"[2]

दलित कविता, कहानी और आत्मकथा तीनों विधाओं में यह प्रतिरोध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। दलित कविताओं में आक्रोश, अस्वीकार और आत्मसम्मान की भावना प्रमुख है। ये कविताएँ जाति-व्यवस्था को धार्मिक या सांस्कृतिक परंपरा नहीं, बल्कि मानवाधिकारों के विरुद्ध अपराध के रूप में प्रस्तुत करती हैं। दलित कहानियाँ रोजमर्रा के जीवन में व्याप्त सूक्ष्म और स्थूल भेदभाव को सामने लाती हैं, जहाँ अपमान सामान्य व्यवहार बना दिया गया है। महत्वपूर्ण यह है कि, दलित साहित्य अस्पृश्यता और शोषण को नैतिक या भावनात्मक समस्या तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे संविधान विरोधी अमानवीयता के रूप में रेखांकित करता है। यह साहित्य समानता और गरिमा को मौलिक अधिकार मानते हुए समाज से जवाबदेही की मांग करता है। इस प्रकार दलित साहित्य सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज ही नहीं, बल्कि परिवर्तन की वैचारिक शक्ति भी है। दलित साहित्य ने हिंदी साहित्य को नई दृष्टि, नई भाषा और नया उद्देश्य दिया है। यह साहित्य न केवल अतीत के अन्याय को उजागर करता है, बल्कि एक न्यायपूर्ण, समतामूलक और मानवीय समाज की आकांक्षा को भी अभिव्यक्त करता है, जो संवैधानिक भारत की मूल आत्मा है।

स्त्री विमर्श:

स्त्री विमर्श आधुनिक हिंदी साहित्य की वह सशक्त धारा है, जिसने पितृसत्तात्मक समाज की जड़ताओं को चुनौती देते हुए स्त्री को करुणा का पात्र नहीं, बल्कि अधिकार-संपन्न नागरिक के रूप में स्थापित किया। संवैधानिक भारत में समानता, स्वतंत्रता और गरिमा के सिद्धांतों ने स्त्री चेतना को वैचारिक आधार दिया। परिणामस्वरूप स्त्री लेखन ने निजी पीड़ा से आगे बढ़कर सामाजिक संरचनाओं, सत्ता-संबंधों और लैंगिक असमानताओं पर प्रश्न उठाए।

छायावादोत्तर हिंदी साहित्य में "महादेवी वर्मा के निबंध स्त्री विमर्श की वैचारिक भूमिका तैयार करते हैं। उनके निबंधों में नारी की वेदना केवल भावुक करुणा नहीं, बल्कि आत्मचेतना का सुस्पष्ट स्वर है। महादेवी वर्मा स्त्री को त्याग और सहनशीलता की मूर्ति के रूप में देखने वाली परंपरा का अतिक्रमण करती हैं। वे नारी के आत्मसम्मान, बौद्धिक क्षमता और स्वतंत्र अस्तित्व पर बल देती हैं।"[3] उनके लेखन में स्त्री की पीड़ा सामाजिक व्यवस्था से जुड़ी हुई दिखाई देती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री का दुःख व्यक्तिगत नहीं, संरचनात्मक है।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श और अधिक मुखर तथा यथार्थपरक रूप में सामने आता है। मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनके उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री का जीवन, उसका संघर्ष, श्रम, देह और निर्णय सब कुछ केंद्र में आता है। मैत्रेयी पुष्पा की स्त्री न तो आदर्शीकृत है और न ही निरीह; वह परिस्थितियों से जूझती हुई अपने अधिकारों के प्रति सजग दिखाई देती है। उनका लेखन यह स्पष्ट करता है कि स्त्री की मुक्ति केवल शहरी शिक्षित स्त्री तक सीमित नहीं, बल्कि ग्रामीण और हाशिए की स्त्रियों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। स्त्री विमर्श की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि, "यह मौन को वाणी में बदलने की प्रक्रिया है। लंबे समय तक स्त्री अनुभवों को या तो दबा दिया गया या पुरुष दृष्टि से परिभाषित किया गया। स्त्री लेखन ने इस चुप्पी को तोड़ा और अपनी भाषा, अपने अनुभव तथा अपनी दृष्टि के साथ साहित्य में प्रवेश किया। यह लेखन घरेलू हिंसा, लैंगिक भेदभाव, आर्थिक निर्भरता, यौन शोषण और सामाजिक नियंत्रण जैसे मुद्दों को खुलकर सामने लाता है।"[4]

महत्वपूर्ण यह भी है कि स्त्री विमर्श केवल विरोध या आक्रोश तक सीमित नहीं रहता, बल्कि संवैधानिक मूल्यों के आलोक में समान नागरिक अधिकारों की ठोस मांग करता है। यह विमर्श साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम बनाता है, जहाँ स्त्री की पहचान

सहनशीलता से नहीं, बल्कि आत्मसम्मान और समानता से निर्धारित होती है। स्त्री विमर्श ने हिंदी साहित्य को नई संवेदना, नई भाषा और नया दृष्टिकोण दिया है। महादेवी वर्मा की आत्मचेतना से लेकर मैत्रेयी पुष्पा की संघर्षशील ग्रामीण स्त्री तक, स्त्री लेखन यह सिद्ध करता है कि स्त्री अब साहित्य में विषय नहीं, बल्कि स्वर है और यही संवैधानिक भारत में स्त्री विमर्श की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्श:

आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्श समकालीन हिंदी साहित्य की वह महत्वपूर्ण धारा है, जिसने विकास, राष्ट्रवाद और मुख्यधारा संस्कृति की एकांगी तथा वर्चस्ववादी अवधारणाओं पर गंभीर प्रश्न खड़े किए हैं। संवैधानिक भारत में जहाँ समानता, स्वतंत्रता और सांस्कृतिक विविधता को मूल मूल्य माना गया, वहीं व्यवहार में आदिवासी और अल्पसंख्यक समुदायों को अक्सर हाशिए पर रखा गया। हिंदी साहित्य ने इस अंतर्विरोध को उजागर करते हुए इन समुदायों की पीड़ा, संघर्ष और अधिकार-बोध को स्वर दिया।

आदिवासी विमर्श का केंद्रीय प्रश्न विस्थापन है। "विकास परियोजनाओं जैसे बाँध, खनन, उद्योग और वन-नीतियों के नाम पर आदिवासियों को उनकी भूमि, जंगल और जीवन शैली से अलग किया गया। यह विस्थापन केवल भौतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और अस्तित्वगत भी है।"[5] इस संदर्भ में महाश्वेता देवी की रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों में आदिवासी जीवन की सरलता, प्रकृति से जुड़ाव और सामूहिक संस्कृति का मार्मिक चित्रण मिलता है। साथ ही, राज्य और सत्ता-संरचनाओं द्वारा किए गए शोषण, हिंसा और उपेक्षा का निर्भीक अनावरण भी दिखाई देता है। महाश्वेता देवी का लेखन आदिवासी समाज को दया का पात्र नहीं, बल्कि अधिकार-संपन्न और संघर्षशील समुदाय के रूप में प्रस्तुत करता है। आदिवासी विमर्श यह स्पष्ट करता है कि, "मुख्यधारा की विकास अवधारणा आदिवासियों के लिए प्रायः विनाशकारी सिद्ध हुई है। जंगल, जल और ज़मीन जो आदिवासी जीवन का आधार हैं, उन्हीं से उन्हें वंचित कर दिया गया। इस प्रकार साहित्य विकास के नाम पर किए गए अन्याय को संवैधानिक मूल्यों के विरुद्ध ठहराता है और वैकल्पिक, मानवीय विकास की आवश्यकता पर बल देता है।"[6]

इसी तरह अल्पसंख्यक विमर्श पहचान संकट, असुरक्षा और संवैधानिक अधिकारों की अनदेखी जैसे मुद्दों को केंद्र में लाता है। धार्मिक, भाषाई और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों के अनुभवों को हिंदी साहित्य में लंबे समय तक या तो गौण रखा गया या रूढ़ छवियों में बाँध दिया गया। समकालीन विमर्श केंद्री साहित्य ने इस प्रवृत्ति को तोड़ते हुए अल्पसंख्यक जीवन की जटिल वास्तविकताओं को सामने रखा। यहाँ प्रश्न केवल धार्मिक पहचान का नहीं, बल्कि नागरिकता, सम्मान और समान अवसरों का है।

महत्वपूर्ण यह है कि आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्श केवल पीड़ा-कथन तक सीमित नहीं रहते। ये विमर्श संविधान-प्रेरित न्याय, समानता और मानवीय गरिमा की स्पष्ट माँग करते हैं। साहित्य के माध्यम से यह सवाल उठाया जाता है कि जब संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार देता है, तो व्यवहार में भेदभाव क्यों बना हुआ है? इस प्रकार हिंदी साहित्य सामाजिक विवेक को झकझोरता है और लोकतांत्रिक चेतना को सशक्त करता है। आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्श ने हिंदी साहित्य को नई वैचारिक दिशा प्रदान की है। इस विमर्श केंद्री साहित्य ने सामाजिक संवाद को गहरा किया है और परिवर्तन की प्रक्रिया को नैतिक तथा बौद्धिक आधार दिया है। यही कारण है कि समकालीन हिंदी साहित्य केवल यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि संवैधानिक मूल्यों के संरक्षण और विस्तार का सशक्त माध्यम बन गया है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि, संवैधानिक भारत का अस्मितामूलक एवं विमर्श केंद्री हिंदी साहित्य आधुनिक लोकतांत्रिक चेतना का सशक्त और सार्थक साहित्यिक रूप है। यह साहित्य स्वतंत्रता के बाद बने भारतीय संविधान की मूल भावना समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व से गहराई से प्रेरित है। जहाँ पारंपरिक हिंदी साहित्य लंबे समय तक अभिजन, कुलीन और सत्ता केंद्रित दृष्टिकोण से संचालित रहा, वहीं विमर्श केंद्री साहित्य ने इस एकांगी दृष्टि को चुनौती देकर हाशिए पर पड़े समाज को

साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित किया। दलित, स्त्री, आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्शों के माध्यम से हिंदी साहित्य ने यह सिद्ध किया कि समाज की वास्तविक संरचना को समझे बिना साहित्य अधूरा है। अस्मितामूलक साहित्य ने व्यक्ति की पहचान को केवल निजी या भावनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भों में परिभाषित किया। इससे साहित्य में अनुभव, यथार्थ और प्रतिरोध को नया महत्व मिला। यह साहित्य करुणा या सहानुभूति तक सीमित न रहकर अधिकार, आत्मसम्मान और न्याय की भाषा बोलता है।

संविधान द्वारा प्रदत्त समानता, स्वतंत्रता और न्याय के सिद्धांत साहित्य में केवल वैचारिक रूप से नहीं, बल्कि संवेदनात्मक स्तर पर भी अभिव्यक्त हुए। दलित साहित्य ने जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता को संवैधानिक उल्लंघन के रूप में प्रस्तुत किया, स्त्री विमर्श ने लैंगिक असमानता और पितृसत्तात्मक नियंत्रण पर प्रश्न उठाए, जबकि आदिवासी और अल्पसंख्यक विमर्श ने विकास, राष्ट्र और संस्कृति की प्रभुत्वशाली अवधारणाओं की आलोचना की। इस प्रकार विमर्श-केंद्री हिंदी साहित्य ने समाज के भीतर छिपी असमानताओं, अन्याय और शोषण को उजागर कर पाठक को केवल भावुक नहीं, बल्कि विचारशील और सजग नागरिक बनने के लिए प्रेरित किया। महत्वपूर्ण यह है कि यह साहित्य यथास्थिति का निष्क्रिय चित्रण नहीं करता। यह केवल जो है उसे दर्ज नहीं करता, बल्कि जो होना चाहिए उसकी आकांक्षा भी व्यक्त करता है। इसी कारण विमर्श-केंद्री हिंदी साहित्य सामाजिक परिवर्तन की चेतना को जीवित रखता है। यह साहित्य सवाल उठाता है, संवाद स्थापित करता है और समाज को आत्ममंथन के लिए विवश करता है। इसी प्रक्रिया में यह साहित्य सामाजिक आंदोलनों का बौद्धिक आधार बनता है और लोकतंत्र को वैचारिक मजबूती प्रदान करता है।

भविष्य की दृष्टि से देखा जाए तो संवैधानिक मूल्यों से प्रेरित यह साहित्य सामाजिक समरसता, मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक संस्कृति की रक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहेगा। बदलते समय और नई चुनौतियों के बीच भी अस्मितामूलक एवं विमर्श केंद्री हिंदी साहित्य समाज की अंतरात्मा की आवाज़ बना रहेगा। इस प्रकार यह साहित्य केवल एक साहित्यिक प्रवृत्ति नहीं, बल्कि संवैधानिक भारत की आत्मा का रचनात्मक और वैचारिक विस्तार है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. क्र. 21
2. वही पृ.क्र. 46
3. मैत्रेयी पुष्पा, स्त्री लेखन की ज़मीन, पृ. क्र. 67
4. शर्मा अर्जुन, हिंदी साहित्य में चित्रित स्त्री, पृ. क्र. 101-102
5. बैसाणे नितिन, साहित्य और समाज, पृ. क्र. 211
6. सोनावणे प्रकाश, हिंदी साहित्य और समाज, पृ. क्र. 77

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359, Peer Reviewed Journal, Impact Factor 6.325
www.ijmrtjournal.com

संवैधानिक भारत की विषमताओं एवं दुर्दशाओं को चित्रित करता हिंदी साहित्य

(जनकवि नागार्जुन एवं अदम गोंडवी के परिप्रेक्ष्य में)

प्रोफेसर डॉ. शशिकांत 'सावन ' (डी.लिट.)

अध्यक्ष,हिंदी विभाग प्रताप स्वशासी महाविद्यालय अमलनेर
शोध निदेशक, क.ब. चो.उत्तर महाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगांव

भूमिका

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में भारतीय संविधान के प्रभाव से विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देते हैं। संविधानिक भारत की विविध स्थितियों दशाओं और दिशाओं को हिंदी साहित्य में संविधान के बलबूते पर डंके की चोट पर चित्रित करने का प्रयास किया है ।इस संदर्भ में प्रसिद्ध हिंदी जनकवि नागार्जुन और अदम गोंडवी विशेष उल्लेखनीय हस्ताक्षर है। जनकवि नागार्जुन जो बिहार आंचल से रहे, उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन भारतीय समाज व्यवस्था ,उसकी गरिमा और उसके साथ-साथ उसकी दुर्दशा को चित्रित करने में समर्पित कर दिया। जनकवि की दृष्टि से नागार्जुन एक सक्षम हस्ताक्षर प्रतीत होते हैं। यह मूलतः समाजवादी प्रगतिशील और समतामूलक साहित्य के प्रबल पक्षधर है। उनकी रचनाये स्वातंत्र्योत्तर समाज,राजनीति और साहित्य की विषमतामूलक तस्वीरों को उजागर करती है। किसान मजदूर श्रमिक वंचित पीड़ित शोषित अपेक्षित और हाशिए के तमाम संवर्गों का चित्रण इन दोनों रचनाकारों के साहित्य में अत्यंत स्पष्ट रूप से उभरकर आया है।

जनकवि अदम गोंडवी, एक ऐसे सच्चे शायर है, जो उत्तर भारत के गोंडा आंचल से समग्र भारतीयता का प्रतिनिधित्व करते हुए नजर आते हैं। आदम गोंडवी की रचनाएं अत्यंत सटीक हैं ,जो समय से मुठभेड़ करनेवाली और सत्य को डंके की चोट पर प्रस्तुत करनेवाली है। इनके शेर तथा गजलें स्वतंत्र गणतंत्रीय देश की दुर्व्यवस्थाओ विषमताओं विडंबनाओ और अंतरविरोधों को बड़ी ही बहादुरी के साथ भारतीय नहीं बल्कि विश्वपटल पर प्रस्तुत करती है। इसलिए दोनों जनकवि संविधानिक भारत की वह नई तस्वीर प्रस्तुत करते हैं, जो बहुजनो, हाशिए के समुदायों, फुटपाथों पर रहनेवालों, गांवो,शहरों नगरों और दुर्गम प्रदेशों में खूनपसीना एक करनेवालों का जीवन चित्रण अत्यंत स्पष्टता के साथ करती है। भारतीय समाज और संवेदनाओं की सच्ची तस्वीरे दोनों जन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आजीवन उजागर करने की कोशिश की है। भारतीय समाज का भीषण वर्तमान ,उसकी विसंगतियों और खोखलेपन को बार-बार अनावृत करके, सामान्य भोली भाली जनता को सजग -सतर्क करते हुए, समतामूलक समाज की स्थापना के लिए आवाहन किया है। इस संदर्भ में यह दोनों रचनाकार स्वयं भी समतामूलक प्रगतिशील समाज की स्थापना एवं संघर्ष के लिए कटिबंध है। इसलिए दोनों रचनाकार हिंदी साहित्य के नहीं अभी तो विश्व साहित्य के श्रेष्ठ जनकवियों में से अपना स्थान रखते हैं। इनकी सृजनशीलता इनका जमीनी चिंतन और बुनियादी साहित्य सृजन हिंदी साहित्य समाज और भारतीयता के वे आयाम प्रस्तुत करते हैं ,जो अब तक कोई कलाकार, रचनाकार या साहित्यकार इतनी स्पष्ट से अधोरेखित नहीं कर पाया है।

***देश की विषमताओं का भंडाफोड़ करती रचनाएं :--**

गणतंत्र भारत की जीती जागती तस्वीरे प्रस्तुत करते समय दोनों भी जनकवि कभी अत्यंत निर्भयता और सटीकता से वर्तमान भारत को समग्र पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हैं। कवि अदम गोंडवी देश की इन विषमतामयी स्थितियों को देखकर, उन पर चिंता जताते हुए और देशवासियों को सजक करते हुए भीषण वास्तव प्रस्तुत करते हुए कहते हैं

"काजू भुने हुए हैं प्लेट में

व्हिस्की गिलास में

उतरा है राम राज्य विधायक निवास में।

आजादी का यह जश्न मनाए तो किस तरह?

जो आ गए हैं फुटपाथ पर

घर की तलाश में!"

देश की विडंबनाओ विकृतियों और अंतरविरोधो को अदम गोंडवी पूर्ण होश और हवास में अपने शेरों के माध्यम से देश की तमाम जनता के सामने प्रस्तुत करते हैं। देश की यह तस्वीरे निश्चित ही दुखदायक और अंतर्मुख करनेवाली है। देश को खोखला बनानेवाले राजनेता देश को लूटनेवाले शासक और इनके निर्दयी पाटों में पिसती जा रही सामान्य जनता अदम गोंडवी ने चित्रित की है। एक रचना में इसी विषमता को अधोरेखित करते हुए वह कहते हैं

"तुम्हारी फाइलों में गांव का मौसम गुलाबी है

मगर, आंकड़े झूठे हैं यह दावा किताबी है ।

लगी है होड़ सी देखो अमीरी और गरीबी में

यह पूंजीवाद के ढांचे की बुनियादी खराबी है ।"

देश में गणतंत्र की आड़ में पूंजीवादी भ्रष्ट शासन प्रणाली हर क्षेत्र में सक्रिय है ।संविधान और गणतंत्र अपने आप में गरिमामयी है, अपने आप में सक्षम है किंतु उनको चलानेवाले एवं उसे संभालनेवाले वर्तमान शासक भ्रष्ट लोभी स्वार्थ और भोगी होने के कारण उनकी गरिमा खत्म हो रही है। जिसका सीधा असर सामान्य जनता पर, मध्यम वर्ग पर श्रमिक किसानों मजदूरों पर और शोषित वंचितों के संदर्भ में अत्यंत करीबी से देखने को मिलता है। सारी योजनाएं इतनी भ्रष्ट हो रही है की आम जनता के लिए इन योजनाओं का 5 या 10% भी लाभ नहीं हो पाता। आम जनता की तमाम सुविधाएं भ्रष्ट शासन प्रणाली और चरित्रहीन स्वार्थी राजनेता गिद्ध की तरह चट कर रहे हैं। फिर वह शहर हो या भारत का गांव इन गिद्धों के झुंड सर्वत्र मंडरा रहे है।सामान्य प्रजा इनकी शिकार बनी हैं।

अदम गोंडवी आम जनता के शायर है रचनाकार है उन्होंने गांव को गांव की समस्याओं को और गांव में हो रहे विकास को काफी नजदीकी से देखा है। विकास के नाम पर प्रशासन और पतित राजनेता स्वयं की ही

सात पीढ़ियों का उद्धार कर रहे हैं। और गांव की सामान्य जनता आज भी मूलभूत सुविधाओं से कोसों दूर है। इसी की एक वास्तविक तस्वीर अपनी एक रचना में वह प्रस्तुत करते हैं

"जो उलझकर रह गई है फाइलों के जाल में

गांव तक वह रोशनी आएगी कितने साल में?

बूढा बरगद साक्षी है, किस तरह से खो गई है रामसुधी की झोपड़ी सरपंच की चौपाल में ?"

आधुनिक कबीर के रूप में जिनको जाना जाता है वे जनकवी नागार्जुन भारत की इस विषमतामयी दर्दनाक झांकियों को देखकर अनेक जगहों पर इसकी सटीक अभिव्यक्ति करते हैं। उनकी एक प्रसिद्ध कविता इस संदर्भ में देश की भीषण वास्तविकता को आलोकित करती है

"कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास

कई दिनों तक काली कुत्तिया सोई उसके पास

दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद

धूआ उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद ।"

देश की सामान्य जनता की मूलभूत समस्याएं भी पूरी नहीं हो रही है। श्रमजीवी किसान मजदूर अनेक दिनों तक भूखे रहकर जिंदगी बिता रहे हैं। इस दुखभरे जीवन को लेकर गणतंत्रिय भारत के विकास के सपने अपनी आंखों में बुनकर सामान्य लोग आगे बढ़ रहे हैं। यह देश का भीषण वास्तव जनकवि ने अत्यंत प्रभावी माध्यम से और अत्यंत निकटता से चित्रित किया है ।

नागार्जुन की रचनाएं आम भारतीय जनता को लेकर वर्तमान परिप्रेक्ष्य की भीषणता अत्यंत सटीकता से दर्शाती है। आज के समय में अर्थात संवैधानिक भारत में होने वाले अन्याय अत्याचार और उच्च नीच के व्यवहार समतामूलक भारत की तस्वीर पर घोर प्रश्न चलो उपस्थित करते हैं। ये सभी प्रश्न भारत की महानता को बार-बार पुन: व्याख्यांकित करते हैं । एक रचना में नागार्जुन कहते हैं

"राम राज्य में अबकी बार रावण नंगा होकर नाचा है

शक्ल सूरत वही है भैया, बदला केवल ढांचा है।"

देश की दुर्दशा का पर्दाफाश करती हुई रचनाएं,:---

सन 1947 में भारत आजाद हुआ और आजाद भारत के लिए सन 1950 में संविधान निर्माण होकर गणतंत्र यह प्रणाली आरंभ हुई। एक ऐसा संविधान, जो देश की तमाम जनता के लिए क्षमता स्वतंत्रता बंधुता न्याय के लिए अग्रसर रहा है। सामान्य प्रजा के हित और विकास के लिए बुनियाद रहा है। ऐसे संविधान के लागू होते ही देश में नवचेतना नवऊर्जा और नवदृष्टि का निर्माण होता रहा ।अपने हक और अधिकारों के लिए सामान्य जनता और देश के संवेदनशील साहित्यकार पूरी क्षमता से आवाज उठाने लगे। दोनों भी जनकवी सामाजिक उत्थान और समता मूलक समाज के प्रबल पक्षधर है। देश की दूर्दशा का, वतन की विसंगतियों का, विकृतियों का और आडंबरों का अत्यंत मार्मिक चित्रण उनके रचनाओं में मिलता है। ऐसी दुर्दशा, जिससे सहृदय चिंतित

होता है, सजग़ होता है और न्याय के लिए पूरी ताकत और निष्ठा के साथ खड़ा रहता है ।दुर्दशा के अनेक आयाम उनके रचनाओं में पाए जाते हैं। अदम गोंडवी देश की दुरावस्था को अधो रेखित करते हुए कहते हैं

"100 में से 17 आदमी फिलहाल जब नाशाद है

दिल पर रखकर हाथ कहिए देश क्या आजाद है?

कोठियों से मुल्क के मेंआर को मत आंक

असली हिंदुस्तान तो फुटपाथ पर आबाद है ।"

रोजीरोटी घरगृहस्थि और जीवन की अनेक समस्याओं को सुलझाते हुए, गणतंत्र की विडंबनाओ को पार करता हुआ आम आदमी सदियों के संताप बेचैनी और घुटन से आगे बढ़ता रहा है। इसलिए देश की आजादी को वह असली स्वतंत्रता कैसे मान सकता है? जिस मिट्टी पर उसे अन्न उगाने का अधिकार है पर दो वक्त की रोटी के लिए जब वह मोहताज है तब उसे मिट्टी को वह अपना कैसे मान सकता है ?अर्थात गणतंत्र प्रणाली में नई सामंतशाही का अदृश्य रूप से उदय होता रहा । जिससे सामान्य प्रजा बेरहमी से पिसती रही, लुटती रही और जीने के लिए तड़पती रही ।

भ्रष्ट शासन व्यवस्था और स्वार्थी दल बदलू राजनेताओं के संदर्भ में अदम गोंडवी की यह अभिव्यक्ति अत्यंत मार्मिक सटीक और भीषण वास्तव को उजागर करनेवाली है। स्वतंत्र भारत को गुमनाम करनेवाले ,बदनामी के अंधेरे में ले जानेवाले और रंगरेलियां मनाने वालो की नीच राजनीति का और देश की दुरावस्थाओं का यातनामयी चित्र प्रस्तुत किया है

" जो डलहौजी ना कर पाया, वो ये हुक्काम कर देंगे

कमीशन दो, तो हिंदुस्तान को नीलाम कर देंगे

सुरा व सुंदरी के शोक में डूबे हुए रहबर

दिल्ली को रंगीले शाह का हम्माम कर देंगे "

स्वतंत्र और संवैधानिक भारत को अधोगति की ओर लेकर जानेवाले धर्म के पाखंडी राजनीति के व्यभिचारी और भ्रष्ट शासन प्रणाली के गिरे हुए नुमाइंदे अपने स्वार्थ के लिए वतन को बेचने गिरवी रखने और उसकी गरिमा नष्ट करने के लिए तत्पर है। उन्हें अपनी और अपनी सात पीढ़ियों की चिंता सबसे पहले है। वतन उनके लिए उनके स्वार्थ के पूर्ण करने का जरिया है। वतन के प्रति ना तो उनकी निष्ठा है ना प्रेम है और नहीं किसी प्रकार का अपनापन ।

गणतंत्र प्रणाली में देश का जो स्थान होना चाहिए, जो गरिमा बढ़नी चाहिए, जिसे अग्रक्रम मिलना चाहिए वह नहीं मिल पाया। जिस लक्ष्य को पूर्ण करना चाहिए उसकी और जानबूझकर दुर्लक्ष किया गया । स्वार्थी लोगों ने स्वहित को केंद्र में रखकर देश को लूटने, उसे कंगाल करने और उसे चूर-चूर करने का पूरा-पूरा प्रयास किया ।व्यक्तियों के साथ देश का भी शोषण करने की मनोहर होड़ इस स्वतंत्र भारत में लगी हुई है। लुच्चे लफंगे नालायक और भ्रष्ट आचरण के दुर्जन सत्ता में आने के कारण और सामान्य जनता तथा शिक्षित वर्ग सामाजिक बंधनों में बंधे होने के कारण ,रोजमर्रा की समस्याओं से गिरे होने के कारण इन नालायक

शासनकर्ता और नीच प्रवृत्तियों के रहबरों को मानो अन्याय अत्याचार और शोषण करने की जैसे छूट मिल गई हो। सर्वत्र स्वार्थी पाखंडी बदलू सत्तालोभी और देश के लुटेरे अग्रक्रम पर नजर आते हैं ।इनका भंडाफोड़ करते हुए जनकवि अदम गोंडवी कहते हैं

" जितने हरामखोर थे कुर्बो जवार में प्रधान बनकर आ गए अगली कतार में दीवार फांदने में यू जिनका रिकॉर्ड था, वह चौधरी बन गए हैं उम्र के उतार में"

गणतंत्र के प्रावधानों का गैर इस्तेमाल करते हुए अथवा उनपर अपने हथकंडों द्वारा अधिकारियों द्वारा तथा सत्ता के माध्यम से पूर्णतः कब्जा करते हुए गणतंत्र की गरिमा नष्ट करने का षड्यंत्र इस संवैधानिक भारत में आरंभ हुआ है। भ्रष्ट शासन व्यवस्था और दलबदलू राजनेताएं इसमें सबसे आगे है ।सत्ता के लिए यह कुछ भी करने को तैयार है। पद एवं सत्ता की लालसा शासन व्यवस्था तथा राजनीति देश को विनाश की खाइयो में लेकर जा रही है। चौंकानेवाले नतीजे , हैरान करने वाली खबरें और गणतंत्र पर प्रश्न उपस्थित करनेवाले संदर्भ यहा रोज देखने को मिलते है ।जिससे सामान्य जनता चाहकर भी पूर्ण ताकत के साथ अंत तक लड़ नहीं पाती है। क्योंकि शासनव्यवस्था एवं कानून की प्रणाली अधिकतर अपने कब्जे में करने के प्रयास वर्तमान समय में हो रहे हैं अर्थात अशिक्षित अज्ञानी पाखंडी और व्यभिचारी लोग जनता पर राज कर रहे हैं, तानाशाह बनकर बैठे हुए हैं। संवैधानिक भारत का या दुर्दशामयी चित्र अत्यंत व्यथित और बेचैन करता है। शायर अदम गोंडवी इसकी और तमाम देशवासियों का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं

".देखना सुनना व सच कहना जिन्हें भाता नहीं
कुर्सियों पर फिर वही बापू के बंदर आ गए
कल तक जो हाशिए पर भी ना आते थे नजर
आजकल बाजार में उनके कैलेंडर आ गए "

सन 1947 के बाद अंग्रेज तो भारत से चले गए के तो आजाद भारत में अपनों की वह यंत्रणा शुरू हुई है, जो अंग्रेजों से भी ज्यादा दुखद सिद्ध होती रही। यह लोग अंग्रेजों से भी एक कदम अन्याय अत्याचारों के संदर्भ में आगे रहे हैं। धर्म जाति उच्च नीच अमीर गरीब अछूत संवर्ण जैसे अनेक मुद्दों पर यह अपनों को ही आपस में लड़वाते रहे और अपना उल्लू सीधा करते रहे। ऐसे शातिर रहबर नजर आते हैं, जो सफेद कपड़ों के भीतर के काले शैतान को हमेशा बनाए रखते हैं। समाज तथा राष्ट्र सेवक के लिबास में ये लुटेरे वहशी और षड्यंत्रि सिद्ध हुए। जिनके बहकावे में आकर सामान्य जनता लंबे समय से आपस में लड़ती रही झगड़ती रही एक दूसरे के खून की प्यासी होती रही। सौहार्द के संबंध बिगड़ते रहे, पड़ोसियों को ही अपना शत्रु समझते रहे। धर्म जाति शिक्षा रोजगार के मूलभूत मुद्दों के माध्यम से भी एक दूसरों को नीचा दिखाते रहे और खून खराबे पर उतारु होते रहे। जिसके कारण देश की अनेक पीढीया बर्बाद, कमजोर और विकलांग बनती रही। इसी का एक भयावह चित्र गोंडवी के शब्दों में

" वल्लाह किस जुनून के सताए हुए हैं लोग?
हमसाये के लहू में नहाए हुए हैं लोग
यह तीक्ष्णगी गवाह है घायल है उनकी रूह

चेहरे ही तबस्सुम से सजाए हुए हैं लोग।"

इस देश में नीचा दिखाने के, हुकूमत करने के और पीढीयों तक आपस में एक दूसरों को लडाने के जो अनेक मुद्दे पाखंडी धर्माधिकारियों ने ढूंढ के निकले हैं ,जो आज भी बने हुए हैं उनमें धर्म-जाति सबसे अग्रणी है। चार वर्णों में बंटा हुआ यहां का एक धर्म एक को ऊंचा और दूसरों को नीचा समझता है ।यह इसकी वर्णप्रणाली है, बुनियादी ढांचा है। इसके बाहर यह कभी नहीं है आना चाहता है ।इसके समर्थन में भी वह अभिमान महसूस करता है ।अपने ही भाइयों को नीचा दिखाने में स्त्रियों को पैरों की जूती समझने में, उपभोग की वस्तु समझने में इनके जीवन का अभिमान है। इसलिए भले ही नाम बड़े-बड़े दिए गए हो, किंतु इन नाम के आड़ में सामान्य जनता का शोषण सदियों से हो रहा है। दलित, शुद्र , अछूत ,हरिजन बहिष्कृत देवदासी, आदिशक्ति तथा अंत्यज जैसे कलईदार नाम देश की दुर्दशा के ही द्योतक हैं। निम्न ठहराए गए ,अछूत माने गए और हरिजन के संज्ञा से अलंकृत किए गए देश के इस सर्वहारा समुदाय को लूटने में उनके शोषण करने में, उनको जिंदा जलाने में उनके अधिकारों को छीनने में पाखंडी सवर्णों को जराभी शर्म नहीं आती, बल्कि यह उसे विधीलिखित और सार्थक मानते हैं। देश के दीन दलित दुखी पीड़ित उपेक्षित प्रताड़ित जिंदा जलाए जाते हैं और यह अपने धर्म पर गर्व करते हैं

देश की इस भीषण दुर्दशा और विकृतियों को दर्शाती हुई बाबा नागार्जुन की यह चंद पंक्तियां सभी को अंतर्मुख करती है

" ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि हरिजन माताएं अपने भ्रूण के जनकों को खो चुकी हो एक पैशाचिक दुष्कांड में एक नहीं दो नहीं तीन नहीं 13 के 13 अभागे और आकिंचन मनुपुत्र जिंदा झोंक दिए गए हो प्रचंड अग्नि की विकराल विकराल में ,"

महात्मा गांधी के संदेशों को स्वीकारने का ढोंग करते हुए और उन्हें संदेशों के विपरीत आचरण करते हुए आज के भ्रष्ट राजनेता ,समाज सेवक और स्वयं को मसीहा माननेवाले लोग जल्लाद से भी क्रूरकर्मा सिद्ध हुए हैं। इनके स्वार्थ के लिए यह किसी भी हद तक चले जाते हैं ।प्रजातंत्र न्याय व्यवस्था रक्षा नीति सभी को अपने वश में करने का षड्यंत्र इनके पास है। इनके चेले चपाटे ,इनकी पहुंच और इनका स्वार्थी गुरुर गणतंत्र की गरिमा को बहस-नहस करता जाता है। चुनाव आयोग हो ,रक्षा व्यवस्था हो शिक्षा नीति हो हर क्षेत्र में पाखंड, ढोंग, संभ्रम और लूटपाट की स्थिति विद्यमान है ।ऐसी भक्ति, ऐसी पूजा और ऐसी सेवा का आभास निर्माण किया जाता है, जिसे जनता भव्य आराधना मानती है, अलौकिक उपासना मानती है। यह आभासी दुनिया प्रजातंत्र के लिए अत्यंत हानिकारक है। इस भ्रमजाल के कोहरे में गणतंत्र गु म होता जा रहा है ।वर्तमान गणतंत्र गर्दिशों में खोता जा रहा है। जनकवि नागार्जुन कहते हैं

" मत पत्रों को चबा गए देवी के वाहन
ऊपर नीचे शुरू हुआ उनका आराधन
गूंगापन छा गया देश में डर के मारे बड़े बड़ों को भी देखते हैं दिन में तारे "

नागार्जुन की यह रचना 'पड़ी लाठियां लोकतंत्र की' इस संग्रह की है, जो देश की दुरावस्था को दर्शाती है। उन्होंने देश की वास्तविकता और घर वर्तमान को अत्यंत सटीक शब्दों में शब्दबद्ध करते हुए कहा है

".देश हमारा भूखा नंगा घायल है बेकारी से

मिले ना रोजी रोटी, भटके दर-दर बने भिखारी से ..

हम गरीब है, हमारी हड्डियों में सदी यों की ठंड बसी है "

भ्रष्ट सत्ता का प्रतिरोधक एवं समता मूलक समाज का पक्षधर हिंदी का जन् साहित्य:--

हिंदी का जन् साहित्य, जो नागार्जुन और अडम गोंडवी जैसे रचनाकारों में विकसित किया है, जिसमें सामान्य जनता की आवाज है, सुख-दुखों की पुकार है और समस्याओं के पहाड़ हैं। ये अनगिनत विसंगतियों के उपरांत भी सच्चाई के पथ पर बड़ी हिम्मत के साथ आगे बढ़ते हैं। ऐसी जनता का यह साहित्य दोनों रचनाकारों के काव्य में मुखरित उठा है ।यह साहित्य राष्ट्रीय सामाजिक और विविध क्षेत्र में पनप रहे भ्रष्टाचारों को न की उजागर करता है बल्कि उसके खिलाफ प्रतिरोध की भावनाये संताप की संवेदनाएं और संघर्ष की ऊर्जा पाठकों के लिए तैयार करता है । अदम गोंडवी देश के भ्रष्ट शासन प्रणाली के संदर्भ में रहते हैं

"यह वंदे मातरम का गीत गाते हैं सुबह उठकर

मगर बाजार में चीजों का दाम दुगना कर देंगे

सदन को घुस देकर बच गई कुर्सी तो देखो

अगली योजना में ये घुसखोरी आम कर देंगे"

चापलूसी रिश्वत और मक्कारी गणतंत्र के लिए सबसे बड़े खतरे हैं। यह खतरे शासन के प्रतिनिधियों द्वारा कभी चुपके से तो कभी खुलेआम व्यवहार में दिखाई देते हैं ।राष्ट्रीय प्रतीकों और सम्मान चिन्हों का मानो बाजारीकरण हो गया है। यह देश अब शाइनिंग इंडिया, डिजिटल इंडिया जैसे अनेक विशेषण से इस कदर आगे बढ़ रहा है कि उसकी असलियत धुंधली होती जा रही है ।भ्रष्ट चीज आज शिष्ट बनकर समाज में सम्मान पा रही है ।गोंडवी की पैनी दृष्टि से अनेक सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक विषमताएं अछूती नहीं रही है। गजल को उन्होंने समाज प्रबोधन का, जन जागरण का और भंडाफोड़ का सक्षम माध्यम बनाया है। समाज के उपेक्षित वर्गों को, विधवा स्त्रियों को और विकलांगों के प्रति उनकी गजलें अत्यंत सजक है। अपने प्रसिद्ध शेर में वह कहते हैं

" भूख के एहसास को शेर ओ सुकून तक ले चलो

या अदब को मुफलिसो की अंजुमन तक ले चलो

जो गजल माशूक के जलवों से वाकिफ हो गई, उसको अब बेवा की माथे की शिकन तक ले चलो"

गणतंत्र में ऐसी स्वतंत्रता ऐसी प्रतिष्ठा और ऐसे व्यवहार समाज मान्य हो रहे हैं जो कथ नी और करनी में आसमानी अंतर रखते हैं ।चोर मक्कार निकम्मे लोग सेवा त्याग बलिदान समर्पण जैसे मानवीय मूल्य पर भाषण देते हैं। जो स्वयं कातिल लुटेरे और डकैत से कम नहीं है वह सत्य और अहिंसा के पाठ पढ़ने में लगे हुए हैं । कथनी और करनी में अंतरविरोधी स्थितियां वर्तमान समय में देखने को मिलती है। ऐसे दोगले लोगो को, राजनेताओं को तथाकथित समाज के मसीहा कहनेवालों को बड़ी निडरता से अदाम गोंडवी कहते हैं

"मुझको सब्र और शब्द की तमिल देना बाद में

पहले अपनी रहबरी को आचरण तक ले चलो

खुद को जख्मी कर रहे हैं गैर के धोखे में लोग

इस शहर को रोशनी के बांकपन तक ले चलो"

जनकवियों के शब्दों में हताश निराश हारे थके दमित पीड़ित लोगों के प्रति न केवल सहानुभूति है बल्कि उन्हें नई ऊर्जा नई ताकत और नई क्षमता के साथ आगे बढ़ने का साहस भी समाया है। इसलिए ये रचनाएं श्रमिक पीड़ित शोषित कृषक मजदूर वंचित सभी के लिए जीने के नई ऊर्जा है ।समता मूलक समाज को अखंडित बनाए रखने का सक्षम सेतु है ।अदम गोंडवी वर्तमान संसद , भोगवादी जीवन, मशीनी दौर, बेचे जा रहे इनाम और संघर्षरत आम आदमी को अभिव्यक्त करते, नई ऊर्जा देते हुए कहते हैं

"मेरी नग़मो में मशीनी दौर का एहसास है

भूख के शोलो में जलती भूख का इतिहास है

चंद् सिक्कों के बदले ईमान बेचा जा रहा है

यह हमारे देश की संसद है या नक्खास है"

तमाम विसंगतियों विडंबनाओ और विषमताओं के उपरांत भी जनकवियों का यह साहित्य समन्वय स्थापित करते हुए सत्य को प्रदर्शित करते हुए, सामान्य जनता के पक्ष में मानवीय मूल्यों को अधिक सक्षम बनाने का आवाहन करता है

एक रचना में वह इतिहास का भीषण सत्य और वर्तमान की आवश्यकता को संकेत करते हुए कहते हैं

"है कहां हिटलर हलाकू जार या चंगेज खान ?

मिट गए सब , कौम की औकात मत छेड़िए

छेड़िए एक जंग मिलजुल कर गरीबी के खिलाफ

दोस्त मेरे, मजहबी नगमात को मत छेड़िए"

कभी नागार्जुन में सत्य , मानवी मूल्य के प्रति और प्रजातंत्र की रक्षा के प्रति अटूट आस्था है ।वह अपना उत्तरदायित्व भलीभांति जानते हुए ,डंके की चोट पर कहते हैं

"जनता मुझसे पूछ रही क्या बतलाऊं? जनकवि हूं मैं साफ कहूंगा क्यों हकलाऊं?"

"..... चाहे दक्षिण चाहे बम जनता को बस रोटी से काम"

नागार्जुन ऐसे रचनाकार है, जिन्होंने हराम की कमाई से धनपति बने, सत्ताधीश बने और शासक बने सभी पर व्यंग्य कसा है। उन्होंने ऐसे धनिकों को शासको को देश और मनुष्यता के नाम पर भीषण कलंक या कोड संबोधा है । वर्तमान सत्ता को संवेदनहीन निर्दयी, रक्तपिपासु माना है जो देश की आम जनता के खून पर धिकारिक ताकतवर हो रही है। इसी को अभिव्यक्त करते हुए वह कहते हैं

"सत्ता की काया लोहे की बनी है उसमें ना रक्त है ना संवेदना

बताऊं कैसे लगाते हैं दरिद्र देश के धनिक? कोढ़ी- कुढब तन पर मणिमय आभूषण जैसे"

जनकवि नागार्जुन अदम्य साहस के साथ शोषित वंचित पीड़ित समुदायों के साथ उनकी आवाज में आवाज मिलाकर शोषित उनके उनके अस्तित्व की पहचान संविधानिक भारत को करते हैं। उनके संघर्ष की ऊर्जा बनते हैं। वह संघर्ष जो समता बंधुता और न्यायमूलक जीवन के लिए देश के सामान्य जनता ने लंबे समय से शुरू किया है ।

"गोबर महगू बलचनमा और चतुरी चमार।सब छीन तो रहे स्वाधिकार

आगे बढ़कर खूब जूझ रहे

रहनुमा बन गए लाखों के

अपने त्रिशंकुपन को छोड़ इन्हीं को साथ दे रहा है मध्यम वर्ग .. आबध्य हु,जी हां आबध्य हूं,

अविवेकी भीड़ की भेड़िया घसान के खिलाफ।

अंधबधिर व्यक्तियों को राह बताने के लिए

अपने आप को भी व्यामोह से बार-बार उबारने के खातिर प्रतिबद्ध हूं जी हां श्रद्धा प्रतिबद्ध हूं।"

निष्कर्ष:--

संविधानिक भारत का अस्मितामूलक हिंदी साहित्य, जो जनकवि नागार्जुन एवं अदम गोंडवी द्वारा लिखा गया है, वह निसंदेह स्वतंत्र भारत की विसंगतियों,विकृतियों विषमताओं और पाखंड का पर्दाफाश करता है। यह गणतंत्रिय भारत की भीषण समस्याओं को न केवल चित्रित करता है, बल्कि स मतामूलक भारत के पुनर्स्थापना के लिए समग्र देशवासियों को तथा पाठकों को सजग भी करता है। अन्याय अत्याचार के खिलाफ डंके की चोट पर देशवासियों को एकत्रित होने एवं एकता,समता,स्वतंत्रता, न्याय और बंधुता के लिए संघर्षरत होकर, गणतंत्र मूल्यों को और भारत की गरिमा को बचाने का आवाहन भी करता है। इसलिए यह जनकाव्य हिंदी साहित्य की एक अमूल्य धरोहर है,जो वास्तविकता की धरातल पर साकार हवा है।

सन्दर्भ:----

1. जनकवि नागार्जुन की कविताएं – डॉ .रामकिंकर , सितंबर 2013 ,(शोध पत्रिका आईजीसीआरडी) वॉल्यूम 1
2. जनकवि नागार्जुन-डॉ सोनी (शोध पत्रिका आईजी ए आर) मई 2020
3. हिंदवी. नागार्जुन का रचना संसार (हिंदवी डॉट ऑर्गनाइजेशन)
4. अदम गोंडवी की 10 प्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ गजलें (हिंदी डॉट ऑर्गनाइजेशन)
5. अदम गोंडवी: एक हमसफर निरंजन सहाय, संपादक डॉ नामवर सिंह (शोध पत्रिका आलोचना) सहस्राबदी अंक 47
6. अदम गोंडवी की समय से मुठभेड़- श्रीमती कविता एवं श्री धर्मदास (शोध पत्रिका जे टी ए आर) अक्टूबर 2024 वॉल्यूम 11

"Affiliated to K.B.C. North Maharashtra University, Jalgaon"
"NAAC Reaccredited A+ Grade with (CFPA 3.52) (Cycle IIIrd),
UGC Honored College with Potential For excellence (CPE)"

IJMRT

TARAN PUBLICATION

International Journal of Multidisciplinary Research and Technology
ISSN 2582-7359
Peer Reviewed Journal
Impact Factor 6.325

www.ijmrtjournal.com